वर्ष १०, अंक ६

श्रीकृष्णाय नमः

मार्च

चैत्र १९९२

Page 172

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक—
ब्र० कृष्णानन्द, प्रेमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख / लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	१५७
२.	पुराण-गाथा [ले० श्री भोलेबाबा जी	१५८
३.	माँ (कविता) [रचयिता श्रीयुत बाबूलाल जी भार्गव "कीर्ति"	१६२
४.	पुनर्जन्म [ले० श्री यमुनाप्रसाद जी श्रीवास्तव	१६३
५.	उपालम्भ (कविता) (रचयिता श्री 'अज्ञात'	१६६
६.	भगवद्दर्शन [ले० श्रीयुत् यशोदानन्द ओझा	१६७
७.	कबीर दास [ले० श्री गंगा विष्णु पाण्डे विद्या भूषण	१६८
८.	विश्वास (सम्पादक)	१७२
९.	प्रेम-प्रताप [रचयिता श्री चतुर्वेदी राम चन्द्रशर्मा 'विद्यार्थी' सम्पादक वाणी खरगोन	१७५
१०.	प्रेम [ले० श्री पं० नन्दकुमार मिश्र जी	१७६
११.	मानस रामायण के एक सोरठा पर विचार [ले० महावीर प्रसाद 'बजरंगबली' श्री वास्तव	१७९
१२.	योग-साधन ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती	१८२
१३.	अमर-आशा [रचयिता श्री महाकवि प्रताप नारायण जी जयपुर	१८४
१४.	भक्ति चिन्तामणि साहित्य समालोचना	१८५-८६
१५.	भजन	१८७

भक्ति के नियम

१. भगवान की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षा और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, नकरना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
डा० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई वदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	७)
सूबदार मेजर दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष १० | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, चैत्र ता० १ मार्च १९३६ | अंक ६ पूर्ण संख्या ११४

वेदोपदेश

उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दास प्रवर्ग रयि मश्वबुध्यम्।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाज प्रसूता सुभगे बृहन्तम्॥

भावार्थ—हे उषे! हम यश वीर (सहायक) दास और अश्व से संयुक्त धन प्राप्त करें। हे सुभगे! तुम सुन्दर यज्ञ में स्तोत्र द्वारा प्रीत होकर, हमें अन्न देकर, वही यथेष्ठ धन प्रगट करो।

पुराण गाथा।

प्रल्हाद कृत नृसिंह स्तुति। (चालू)

[लेखक-श्रीयुत भोले बाबाजी]

प्रल्हाद-हे अनन्त! मेरा पिता मुझे मार डालना चाहता था, मेरे पिता से मुझे बचाकर आपने मेरे प्राणों की रक्षा की और मेरे पिता को मार डाला, आपने अपने भक्त नारद के वचन सत्य करने को यह सब किया है यानी नारद का वचन है कि सर्वत्र ईश्वर सत्य है, इसी वाक्य को आपने सत्य कर दिया है अथवा अपने भक्त सनत्कुमार आदिकों का वाक्य सत्य करने के लिये आपने ऐसा किया है। सनत्कुमार आदिकों का वचन है कि हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की मृत्यु भगवान् के हाथ से होगी और वे तीन जन्मों में मुक्त होंगे, इस वाक्य को आपने सत्य कर दिया है। अथवा आपने भक्त हिरण्यकशिपु के वाक्य को सत्य करने को ऐसा किया है। हिरण्यकशिपु का वाक्य है कि यदि ईश्वर सर्वत्र है, तो खम्भे में भी होना चाहिये, इस वाक्य के सत्य करने को आपने ऐसा किया है।

हे देव! सच्ची बात तो यह है कि संसार के रूपमें आपही स्थित हैं, क्योंकि जब यह बात निश्चित है कि इस जगत् के आदि और अन्त में आप हैं, तो बीचमें भी आपही हैं। आपने अपनी माया से इस गुणमय संसार को रचा है, रचकर अन्तर्यामी रूप से आपने प्रवेश किया है, इसलिये आप अनेक प्रतीत होते हैं, नहीं तो आप एक ही हैं। हे ईश! यह सत् और असत् यानी स्थूल और सूक्ष्म जगत् आपका ही रूप है, फिर भी इस जगत् से आप भिन्न हैं परन्तु यह जगत् आप से भिन्न नहीं है। जब यह समस्त जगत् आपका ही रूप है, तो 'यह मैं हूं' 'यह दूसरा है' यह बुद्धि मिथ्या है और यह ही माया है, क्योंकि जैसे पृथ्वीमय बीज से उत्पन्न होने से वृक्ष पृथ्वीमय बीज है और पृथ्वी पांच सूक्ष्म भूत रूप होने से पांच सूक्ष्म भूत रूप है, इसलिये वृक्ष भी पांच सूक्ष्म भूत रूप हैं, इसी प्रकार यह जगत् भी आपका ही रूप हैं, क्योंकि इस जगत् के जन्म, पालन, नाश और प्रकाश के हेतु आप हैं, इसलिये यह जगत् आपका ही रूप है। हे प्रभो! इस संसार को अपनी इच्छा से आप अपने में लीन करके प्रलय के जलमें शयन करते हैं परन्तु आपका वह शयन सामान्य जीवों की निद्रा के समान तमो गुण की वृत्ति नहीं है, क्योंकि जैसे जीव निद्रा में अपने स्वरूप को भूल जाता है, वैसे आप अपने स्वरूप को नहीं भूलते किंतु अपने आनन्दमय स्वरूप का आप प्रलय में भी अनुभव किया करते हैं और अपने स्वरूप के प्रकाश से निद्रा का नाश किये हुए रहते हैं, इसलिये केवल योग से आंखें मूंद लेते हैं, यह आपकी स्थिति चतुर्थ अवस्था में है, क्योंकि इस स्थिति में सुषुप्ति के समान तमोगुण का योग नहीं होता और जागृत्

तथा स्वप्न के समान विषयों का संयोग भी नहीं होता, इसलिये आपकी यह स्थिति तुर्या स्वरूप है।

हे विश्वनाथ ! जो आप संसार को अपने में लीन करके सोये थे, वे ही आप जब काल की शक्ति से प्रकृति के गुणों को प्रेरित करते हैं और शेष शय्या पर स्थित होकर लगायी हुई समाधि को तोड़ते हैं, तब आप में लुपा हुआ संसार रूप कमल प्रकट हो आता है, जैसे कि बीजमें से वट का वृक्ष प्रकट हो आता है, इसलिये यह संसार आपका रूप ही है, आपसे भिन्न नहीं है। सृष्टि कालमें इस संसार रूप कमल में से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उत्पन्न होने के पीछे ब्रह्मा जी इस बातकी खोज करने लगे कि इस कमल का उत्पन्न करने वाला कौन है। ऐसा जानने के लिये वे सौ वर्ष तक जलमें डुबकी मारे हुए आपको ढूंढते रहे परन्तु यद्यपि आप कारण रूप से उनमें व्यापक थे, तो भी वे आपको कमल से पृथक् न पासके ! पाते भी कैसे ? अंकुर के उत्पन्न होजाने पर अंकुर से पृथक् बीज कैसे मिल सका है ? नहीं मिल सका।

जब ढूंढने पर भी आप न मिले, तो ब्रह्मा जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। पश्चात् जब वे बहुत काल तक आप का ध्यान करते रहे, तब उनका अंतःकरण निर्मल होगया और उनको ऐसा ज्ञान हुआ कि जैसे पृथ्वी में गंध व्यापक है, इसी प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म आप महाभूत इन्द्रिय, अंतःकरण और शरीर में व्यापक हैं। पश्चात् उनको आपका माया प्रधान पुरुष रूप भी दिखायी दिया। इस माया प्रधान पुरुष रूप में सृष्टि के चिन्ह रूप हजारों मुख, चरण, शिर, हाथ, जंघा, नासिका, कान, नेत्र, आभूषण और आयुध यानी अस्त्र शस्त्र थे। जब इस महा-पुरुष रूप को देखकर ब्रह्मा जी बहुत हर्षित हुए, तब आपने हयग्रीव रूप धारण करके वेद के विरोधी रजोगुण और तमोगुण रूप बड़े बली मधु और कैटभ नामक दैत्यों को मार कर ब्रह्मा जी को वेद लाकर दिये। इसी कारण से विद्वानों ने सतो-गुण की आपको प्यारी मूर्ति माना है।

हे भगवन ! हे महापुरुष ! इसी प्रकार आप मनुष्य, पशु, ऋषि, देवता और मत्स्य अवतार धारण करके लोकों का पालन करते हैं और जगत् के विरोधियों का नाश करते हैं, परम्परागत युगों के धर्मों की रक्षा करते हैं किंतु कलियुग में गुप्त होजाते हैं, इसलिये आप त्रियुग कहे जाते हैं। हे विकुंठनाथ ! तीव्र वेग वाला यह मन पापों के कारण से इतना दुष्ट और असाधु होगया है कि काम की व्यथा से पीड़ित और हर्ष, शोक, भय और धन पुत्र इत्यादि की अभिलाषाओं से दुःखी होकर भी आपकी कथा के श्रवण में नहीं लगता। ऐसे दुष्ट मनसे मैं बेचारा आपके तत्त्व को कैसे विचारूं। हे अच्युत ! जिह्वा तृप्ति रहित होकर मुझे षट् रसों की ओर खेंचती है, उपस्थ दूसरी ओर खेंचता है, त्वचा, स्पर्श की तरफ खींचती है, उदर भोजन की तरफ खेंचता है, कान शब्द की तरफ खेंचते हैं, नासिका इतर फुलैल आदि की तरफ खेंचती है, चपल नेत्र रूप की ओर खेंचते हैं, कर्मेंद्रियां अपने वश में करना चाहती हैं। इस प्रकार जैसे अनेक स्त्री वाले पुरुष की स्त्रियां दुर्दशा करती हैं, इसी प्रकार इन्द्रियां मुझे व्याकुल करती हैं, आपके भजन में मुझे लगने नहीं देती।

हे भगवन् ! मैं अकेला ही इस संसार रूप वैतरणी में पड़ा होऊं, ऐसा नहीं है किंतु सभी लोग इसी प्रकार अपने कर्मों के कारण से इस संसार रूप वैतरणी में पड़े हुए बहे चले जारहे हैं,

कोई किसी से जन्म पाते हैं, कोई किसी से वरण को प्राप्त होते हैं, ऐसा करने से एक दूसरे से डरते रहते हैं, जिसे अपना समझते हैं, उससे प्रेम करते हैं, जिसे दूसरा समझते हैं, उससे वैर करते हैं! आप इस संसार रूप वैतरणी के पार स्थित हैं इसलिये करुणा करके उन अज्ञानी जीवों को इस संसार रूप वैतरणी से निकाल कर उनका पालन कीजिये। हे भगवन्! ऐसा करने से आपको कुछ परिश्रम नहीं होगा, क्योंकि आप सर्व पूज्य हैं, इस संसार की उत्पत्ति और नाश के हेतु हैं, इसलिये इन जीवों का उद्धार करना आप के बायें हाथ का खेल है! हे दीनबंधो! अज्ञानियों का उद्धार करना ही आपका परम अनुग्रह है, उनका ही उद्धार कीजिये! हम लोगों को उसकी आवश्यकता नहीं है. क्योंकि हम लोग तो आपके प्यारे भक्तों का सेवन करने में ही मग्न हैं, इसलिये हमको संसार का भय नहीं है! मेरा चित्त तो आप की कथामृत के गान में लीन रहता है, इसलिये मैं तो दुर्लंघ्य संसार रूप वैतरणी को तर जाऊंगा परंतु उन अज्ञानियों के लिये शोक करता हूं, जो आपकी कथामृत से विमुख हैं और इन्द्रियों के सुखों के लिये कुटुम्ब आदि का भार अपने ऊपर लादे हुए हैं। इसी भार से दुबे हुए निर्वाह कर रहे हैं। यदि आप कहें कि तेरे भक्त मुनि लोग एकान्त में बैठकर अपनी मुक्ति के लिये यत्न करते हैं, तू भी ऐसा ही कर, दूसरों के उद्धार की झंझट में क्यों पड़ता है। तो हे देव! आपका कथन ठीक है, मुनि लोग प्रायः ऐसा ही करते हैं, उन्हें दूसरों के उद्धार से कुछ प्रयोजन नहीं है परन्तु हे भगवन्! संसार वैतरणी डूबते हुओं को छोड़ कर मैं अकेला मुक्त होना नहीं चाहता किंतु उनको मुक्त कराके पीछे मुक्त होना चाहता हूं और भटकते हुओं का आपके सिवाय दूसरा रक्षक नहीं देखता, इसलिये आपसे उनके उद्धार के लिये प्रार्थना करता हूं। ऐसी बुद्धि भी मुझे आपके भक्तों की कृपा से हुई है।

हे देव! यदि कोई शंका करे कि गृहस्थ संसारियों को भी तो मैथुनादि में सुख मिलता ही है, तब मोक्ष के सुख के लिये साधन करना व्यर्थ ही है, तो यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि मैथुनादि सुख तुच्छ हैं और दुखमय भी हैं, इसलिये खाज के समान हैं। जैसे कि हाथ में खाज होने पर खुजाने से सुख की प्रतीति होती है किंतु खुजाने से वह खाज बढ़ जाती है और अन्य अंगों में घाव करदेती है, घाव होजाने से महा कष्ट होता है। इसी प्रकार अनेक दुख पाने पर भी इन भोगों से अज्ञानी तृप्त नहीं होते किंतु अधिक २ दुःख उठाते हैं। कोई धैर्यवान् पुरुष ही काम के वेग को सह सका है। हे महापुरुष! यद्यपि मौन, व्रत, शास्त्र, तप वेदाध्ययन, स्वधर्म, व्याख्यान, एकान्तजप, और समाधि ये सब मोक्षके साधन हैं। ये सब साधन जितेन्द्रिय पुरुषों के लिये ही मोक्ष के साधन हैं। अजितेन्द्रिय पुरुषों के लिये तो ये सब जीविका के ही उपाय हैं, कभी २ दांभिक पुरुषों के लिये भी, जीविका के उपाय होजाते हैं और कभी २ जीविका में भी उपयोगी नहीं होते, क्योंकि जैसे काठकी हांडी एक बार ही आग पर चढ़ती है, इसी प्रकार दंभ भी थोड़े दिन ही चलता है।

हे प्रभो! आप अरूप हैं यानी आपका कोई रूप नहीं है, तो भी आपकी माया से आपके सत् और असत् दो रूप वेद में बताये हैं। स्थूल दृश्य और कार्य को सत् कहते हैं और सूक्ष्म, जीव और कारण को असत् कहते हैं,

क्योंकि ये देखने में नहीं आते। आप अरूपी के ये दोनों रूप बीज और अंकुर के समान लगातार चले जाते हैं और आपसे भिन्न नहीं हैं, इसलिये पुरुषार्थ करने वाले इन दोनों रूपों में ही आपकी खोज करते हैं। जैसे दो लकड़ियों को रगड़ कर अग्नि निकाल लिया जाता है, इसी प्रकार इन दोनों रूपों का विचार करके विद्वान आप अरूपी को ढूंढ लेते हैं। हे भूमन्! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पांच भूत आपका ही रूप हैं, शब्दादि पांच तन्मात्रा भी आपका ही रूप हैं और प्राण, इन्द्रिय, बुद्धि, मन, चित्त और अहंकार ये भी आपही हैं। इनके सिवाय सगुण और निर्गुण जो कुछ है, वह सब आपही हैं, और जो कुछ मनसे विचारा जाता है और वाणी से कहा जाता है, वह सब आपसे भिन्न नहीं है।

हे अनन्त! गुणाभिमानी देवता, गुणों से रचे हुए महत्त आदि के अभिमानी देवता, मन, बुद्धि इत्यादि तथा समस्त देवता और मनुष्य आदि ये सब अन्त वाले हैं, इसलिये ये आप अनन्त को नहीं जान सके। ऐसा समझ कर विद्वान् पढ़ने आदि उद्योग को छोड़ देते हैं और आपकी भक्ति ही करते हैं। आपको नमस्कार, आपकी स्तुति, कर्मों का आपमें समर्पण, पुष्पदानादि पूजा, आपके चरणों का स्मरण और आपकी कथाओं का श्रवण ये छः आपकी भक्ति के अंग हैं। इन छः अंगों से आपकी भक्ति की जाती है, इन छः अंगों के बिना आपकी भक्ति नहीं होती और भक्ति बिना आपकी प्राप्ति नहीं होती, भक्ति से ही आपकी प्राप्ति होती है, इसलिये विद्वान सबकी आशा छोड़कर आपकी भक्ति ही करते हैं, दूसरा कोई काम नहीं करते। ऐसे परमहंस ही धन्य हैं, उन्हीं का मनुष्य जन्म सफल है, अन्य तो व्यर्थ ही धौंकनी के समान सांस लेते हैं। हे भगवन! सबको ऐसी सुबुद्धि दीजिये कि भोगों की आसक्ति छोड़ कर आपके चरण कमलों का ही सर्वदा निरन्तर सत्कार पूर्वक ध्यान करके जन्म मरण रूप संसार से मुक्त होकर सुखी हो जांय।

नारद-हे शौनक! जब परम भागवत प्रल्हाद जी ने इस प्रकार भक्ति पूर्वक निर्गुण रूप भगवान के गुणों का वर्णन किया तो भगवान् का क्रोध शांत होगया और वो प्रसन्न होकर कहने लगे-

श्री भगवान-हे भक्त प्रल्हाद! हे असुरोत्तम मैं तुझसे प्रसन्न हूं, तू मुझसे इच्छित वरदान मांगले। मैं मनुष्यों की कामनाओं का पूर्ण करने वाला हूं। कोई ऐसी कामना नहीं है, जिसको मैं पूर्ण नहीं करता, किंतु सभी कामनाओं को मैं पूर्ण करता हूं। पृथ्वी का अखंड राज्य, कल्प भरकी आयु, स्वस्थ जीवन, स्त्री पुत्रादि कुटुम्ब, ऋद्धि सिद्धि इन्द्रादि देवताओं के दिव्य भोग, इन्द्र पद, ब्रह्मा का पद इत्यादि तेरे जी में आवे, सो ही मांग ले, तेरे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है। हे आयुष्मन्! जो मुझे प्रसन्न नहीं करता, उसे मेरा दर्शन दुर्लभ है और जो मुझे प्रसन्न कर लेता है, उसके लिये मेरा दर्शन सुलभ है। मेरा दर्शन होने के पीछे फिर जीव अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इन तीनों तापों से नहीं तपता किंतु सर्वदा के लिये शोक, मोह, भय आदि से रहित सुखी, अजर अमर हो जाता है, इसलिये श्रेयभिलाषी, महाभाग्यवान् धीर साधु सर्व प्रकार से मुझे ही प्रसन्न करते हैं, क्योंकि मैं समस्त अभिलाषाओं को देने वाला स्वामी हूं। तू ने मुझे प्रसन्न कर लिया

है, मैं तुझे सब कुछ देने को तैयार हूं तेरी इच्छा हो सो ही मांगले।

नारद-हे शौनक! उपरोक्त वर लोकपालों को लुभाने वाले हैं, उन वरों से बहुत कुछ लुभाया हुआ भी असुर श्रेष्ठ प्रह्लाद लोभ में नहीं आया क्योंकि वह भगवान् का अनन्य भक्त था। भगवान् के अनन्य भक्त सिवाय भगवान् की भक्ति के अन्य वस्तु भगवान् से नहीं मांगते, क्योंकि एक भगवान् ही सत्य, नित्य, सुख स्वरूप, अनन्त और ज्ञान स्वरूप हैं, उनके सिवाय समस्त वस्तुयें असत्य, दुःख रूप, अन्त वाली और जड़ रूप है, इसलिये जैसे सच्ची मिठाई खाने वाला झूठी मिठाई खाने की इच्छा नहीं करता अथवा जैसे अमृत का चखने वाला विषकी इच्छा नहीं करता इसी प्रकार भगवान् के भक्त अन्य संसारी वस्तुओं की इच्छा नहीं करते।

पाठक! प्रह्लाद और भगवान् का आगे का संवाद बहुत ही रोचक और शिक्षाप्रद है, उसको आगामी अंक में आपके कर्ण गोचर करेंगे, यहां तो इतनी ही शिक्षा लेनी है कि सिवाय परमात्मा के अन्य सब वस्तुयें नश्वर होने से सुख रूप नहीं है, एक परमात्मा ही सुख रूप है और वह हम सबका आत्मा है, इसलिये देहादि अनात्म पदार्थों की प्रीति छोड़कर उसी की हमको भक्ति करनी चाहिये, सुखी होने का यह ही मार्ग है, अन्य कोई, मार्ग नहीं है। सच कहा है:-

देह गेह में चित्त लगाता, शान्ति नहीं सो पाता है।
बार बार जन्मे अरु मरता, नाना कष्ट उठाता है॥
अपना आप भजे जो ईश्वर, भव सागर से तरता है।
भोला! सो निर्मल पद पाता, ना जन्मे ना मरता है॥

---

* माँ *

(रचयिता श्रीयुत बाबूलाल जी भार्गव "कीर्ति")

कितनी वीणाओं से निकली होगी स्निग्ध सरस झंकार।
कितनों की ही स्वर-लहरी में डूब गया होगा संसार॥
मान लिया मां! कह दिये थे, तूने ही वे सारे गान।
पर नवीनता युत होने से, रही निराली उनकी शान॥
तृप्त हो चुके होंगे सारे, जब सुनकर उनका संगीत।
तो मां मैं अलापने जाता, हूं अपने ये नीरव-गीत॥
मां! इससे कर इन्हें सुरीले, अब सुरीला पन भरदे।
मेरी भग्न विपंची से ही, विश्व विमोहित सा करदे॥

पुनर्जन्म

[ले० श्री यमुनाप्रसाद जी श्रीवास्तव]

गतांक से आगे

ज्यों नर त्यागत वस्त्र को जो पुरान हुई जाइ।
अरु नवीन धारण करत, त्यों देही तन पाइ॥

परन्तु तू ऐसा नहीं कर सकता। क्योंकि प्रकृति सामने रहती है वह अपना हाव-भाव दिखा-कर तुझे बहिर्मुख करलेती है इसीलिये तू आत्म विस्मृत रहता है। तुझे तो सामने की ओर देखना ही नहीं चाहिये। अपनी दृष्टि को सदा भीतर की ओर अथवा पीछे की ओर रखना चाहिये। चक्षुओं को सामने रखकर भी तू अपने मनको पीछे की ओर रख सकता है इसलिये अपनी दृष्टि सदा पीछे की ओर रखकर तू मुझे देखने का अभ्यास कर। जो लोग मेरी ओर दृष्टि नहीं रखते वरन अन्य वस्तुओं की ओर दृष्टि रखते हैं वे व्यभिचार के भागी होते हैं। गृह देवियों को इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। उन्हें तो पति के अतिरिक्त और किसी पुरुष की ओर—चाहे वह उनका देवर या जीजा आदि ही क्यों न हो देखना या उसे छूना न चाहिये।

मैं माया में अधिष्ठान न करके और उसे अपने वशमें करके अपनी आत्म-माया के द्वारा अव-तार ग्रहण करता हूं और अस्ति, भाति, रूप, अव्यक्त अवस्था आदि अनेक रूपों के आच्छादन से आच्छा-दित होकर पूर्ण होता हुआ भी, मूर्ख मनुष्यों को परिछिन्न सा भासता हूं।

'पूर्णोऽपिमूढ़ दृष्टीनां विच्छिन्न इव लक्ष्यसे।'

मैं जगत के पालनार्थ ही अवतार ग्रहण करता हूं। मेरे दो शरीर हैं।

१. विराट अर्थात स्थूल शरीर।
२. हिरण्य गर्भ अर्थात् सूक्ष्म शरीर।

'देह द्वयम देहस्य तव विश्वं रि रक्षिषोः।
विराट् स्थूलं शरीरंते सूत्रं सूक्ष्म मुदा हृतम्॥

विराट शरीर से ही सहस्रों अवतार ग्रहण करते हैं और कार्य पूर्ण होजाने के पश्चात् वे उसी में प्रवेश हो जाते हैं।

विराजः सम्भवन्त्येते अवतारः सहस्रशः।
कार्यान्ते प्रविशन्त्येव विराज रघुनन्दन॥

मैं माया मनुष्य हूं। माया के आश्रय से ही मेरा जन्म हुआ है। मैंने अपने जन्म धारण करने के समय माता कौशल्या को अपना चतुर्भुजी रूप दिखाया था वह यह है।

नीलोत्पल दलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः।
सहस्राक प्रतीकाशः किरीटी कुञ्चिताकः॥
शंखचक्र गदा पद्म वनमाला विराजितः।
श्रीवत्सहार केयूर, नूपुरादि विभूषणः॥

छंदः-

भये प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी।
हर्षित महतारी मुनिमन हारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा तनुघनश्यामा निज आयुध भुजचारी॥
भूषण वनमाला नयन विशाला शोभा सिंधु खरारी॥

इस प्रकार दर्शन पाकर माता कौशल्या ने यह स्तुति की थीः-

कह दुहुं करजोरी अस्तुति तोरी किहि विधि करौं अनंता।
माया गुन ज्ञाना तीत अमाना वेद पुराण भनंता॥
करुणा सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी प्रगट भये श्रीकंता॥
ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहे।
मम उरसो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहे॥
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसकाना चरित बहुत विधि कीन्हचहै।
कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥
माता पुनि बोली सोमति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजे शिशुलीला अति प्रिय शीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि वचन सुजाना रोदनठाना हुई बालक सुर भूपा।
यह चरित जेगावहिं हर पद पावहिं ते न परहिं भव कूपा॥

माता देवकी ने भी मुझे भूमि पर खड़ा देख कर कहा थाः-

योऽनंत रूपोऽखिल विश्वरूपो, गर्भेषु लोकान् वपुषा बिभर्ति।
प्रसीदतां मेषस देवदेवः स्वमायया विकृत बालकत्वम्॥
उप संहर सर्वात्मन् रूप मेतच्चतुर्भुजम्।
जानाति अवतारं ते, कंसोऽयं दितिजाधमः॥

भावार्थ

जो अनन्त रूप अखिल विश्वरूप और समस्त लोकों को जठर में धारण करते हैं वही आप देव देव माया के प्रभाव से अब बाल रूप धारण कर रहे हैं। आप प्रसन्न हूजिये। और अपने इस चतुर्भुजी रूपका उपसंहार कीजिये जिससे दैत्याधम कंस आपको अवतार न समझ सके।

भला! यह मेरी चतुर्भुजी मूर्ति गर्भमें कैसे रह सकती है?

जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डा परमाणवः।
त्वं ममोदर संभूत इति लोकस्य विडम्बसे॥

असल बात यह है कि मैं एक स्थानपर अदृश्य भाव से स्थिर रहकर एक नवीन मदारी की सृष्टि कर देता हूं और उसके द्वारा अद्भुत लीलायें दिखलाता हूं। इसी प्रकार मैं अपने चित्त स्वरूप में स्थिर रहकर अपनी माया द्वारा अपने शरीर की रचना कर लेता हूं।

मेरे तिलस्म अर्थात रचना में और लौकिक मदारी के इन्द्रजाल में इतना ही अंतर है कि लौकिक मदारी केअपने जादू अथात् माया का उपसंहार करलेने पर भी जादूकी सृष्टि और उसी के साथ नया मदारी भी नष्ट हो जाता है परन्तु मेरे तिलस्म में माया का उपसंहार करलेने पर भी मेरे विग्रह का नाश नहीं होता इसलिये मेरी मूर्ति को 'नित्य' कहते हैं। यह सत्य है कि मेरा जन्म मरण नहीं होता परन्तु मैं अपनी अघटन घटना पटीयसी त्रिगुण मयी माया को स्वीकार करके चिदाभास योग से शरीर के समान प्रकाशित होता हूं। वास्तव में देह भाव मुझमें नहीं है मेरी माया ही मेरी उपाधि है। यह जो मेरा शरीर तुझे दिखाई देरहा है माया का रचा हुआ है।

'दैहिक गुणाः मायाङ्गा।'

भावार्थ

देह के गुण ही माया के अंग हैं। मैं परिपूर्ण अर्थात् सर्व व्यापक आत्मा हूं। मेरा जगतरूपी

विराट शरीर इन्द्रजालिक अर्थात् माया रचित है। निर्गुण सच्चिदानंद रसघन भगवान् में शरीर भाव नहीं है। मेरा यह शरीर माया अर्थात् जादू से बना है और यह तिलस्माती अर्थात् मायिक है। वास्तविक नहीं है।

'संसार मिथ्यात्व शिवात्मतत्वम।'

भावार्थ

संसार मिथ्या है। शिव स्वरूप आत्म वस्तु ही सत्य है।

मायिक को वास्तविक और असत्य को सत्य मानना ही अज्ञान है। जिस प्रकार सर्व साधारण को देखे और सुने हुए विषयों का संकल्प होता है उसी प्रकार मायाको उनके अतिरिक्त अनदेखे और अन सुने अपूर्व विषयों का संकल्प भी होता है इसी लिये माया को 'अघटन घटना पटीयसी' कहते हैं। यदि माया में यह शक्ति न होती तो ब्रह्म से जगत नामकी कोई सृष्टि कभी उत्पन्न ही न होती, और यदि माया न होती तो अकेला ब्रह्म ही रहता जगत् नाम की कोई वस्तु न होती। इसीलिये शास्त्रों में कहा है कि जबतक जगत का विस्मरण न होगा तब तक प्राणी को परमात्मा के प्रकाश का अनुभव न होगा और उस समय तक उसे जन्म-मरण रूपी संकट से छुटकारा भी न मिलेगा।

यह जगत भ्रान्ति का विकाश है और मृग तृष्णा के जलके समान केवल धोखा ही धोखा है। विस्मरण करने के लिये मानस पूजा और भावना राज्य अर्थात् सूक्ष्म जगत में भ्रमण करने का अभ्यास करना चाहिये। इस अभ्यास के दृढ़ होते ही स्थूल जगत् नहीं रहेगा और उसके साथ सूक्ष्म जगत भी विला जायेगा। केवल परमानन्द परमात्मा ही रह जावेगा, यही मुक्ति है। सर्वगत शांत परमात्मघन पवित्र चेतना शून्य चिन्मात्र शरीर परमाकाश ही चारों ओर फैल रहा है। यह परमाकाश सर्वगत और सर्व शक्ति मान है। यही सर्व और सर्वात्मा है। यहां जिस स्थान पर जिस रूपसे प्रकाशित होता है उसी रूपसे वहां रहता है।

अस्ति सर्वं गतं शान्तं परमार्थं मलं शुचि।
अचेत्य चिन्मात्र वपुः परमाकाश माततम॥
तत्सर्वगं सर्व शक्ति सर्वं सर्वात्मकं स्वयम्।
यत्र यत्र यथोदेति तिष्ठत्यस्ते तत्र तथैव॥

यह परमाकाश ही सर्व वस्तुओं की भित्त है। इसी के आश्रय से मिथ्या पदार्थ भासते हैं। सत्य की सत्यता के कारण ही मिथ्या वस्तु भी असत्य होकर सत्य सी भासती हैं। इसलिये कहा है कि जो सर्वत्र है वही अपनी माया शक्ति की सामर्थ्य से नाना रूपों में स्फुरित होता है। इस प्रकार जो प्राणी आत्मतत्व को संसार की तरंगों के भीतर देखता है और मेरे जन्म कर्म को अध्ययन करके जान लेता है वह अपने जन्म और कर्म के तत्वों को भी जान लेता है और उनके जान लेने पर उसे जन्म मरण से छुटकारा मिलजाता है और उसके संपूर्ण दुःखो की निवृत्ति हो जाती है।

'जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः।
त्यक्त्वादेहं पुनर्जन्मं नैति मामेतिसोऽर्जुनः॥

भावार्थ

मेरे जन्म अरु कर्म कह तत्व लहै जो जानि।
देह तजै मोको मिले बहुरि न जन्मे आनि॥

अथवा

जन्म कर्म मम दिव्य है अस जानत जो कोय।

तनु तज पावत मोहि को जन्म फेर नहिं होय ॥

और भी :-

जो नर हरि सो करे मिटता आप हरी सम होई ।

और भी:-

पहचानलो अगर तुम, सुन्दर स्वरूप मेरा ।
हो जायगा तुम्हारा, सुन्दर स्वरूप मेरा ॥

और भी:-

'जानत तुमहि, तुमहि हो जाई' ।

भक्ति के प्रिय पाठको ! यदि सहज में आप मुक्ति चाहते हैं तो कुछ न कीजिये केवल राम नाम का जप कीजिये ।

'मोक्षार्थं राघवं जपेत' ।

और भी:-

राम रामेति ये नित्यं जपन्ति मनुजा भुवि ।
तेषां मृत्यु भयादीनि न भवन्ति कदाचन ॥

और भी:-

अहं जपामि देवेर्षि रामं नाक्षरं द्वयम ।
श्री रामरूप स्वरूपस्य ध्यानं कृत्वा हृदिस्थले ॥

बस ! इसी में हमारा आपका कल्याण है। अब बोलिये भगवान् श्री कृष्णचन्द्र आनन्द कन्द वृन्दावन विहारी की जय ! जय !! जय !!!

---

* उपालम्भ *

(ले० श्रीयुत 'अज्ञात')

शरणागत हो चुका नाथ, फिर क्यों बिसराया । दीन हीन बलहीन दास, निज क्यों ठुकराया ॥
मन तुम को दे चुका, वहां से वह क्यों भागा । तज कर सुन्दर कमल चरण विषयों में लागा ॥ १ ॥
तुमने अपनी नाथ धरोहर क्यों नहिं राखी । भेंट वस्तु भी हाय दूध की करती माखी ॥
जिसको तेरे बिना नाथ नां और सहारा । उसको कैसे हाय चित्त से आज बिसारा ॥ २ ॥
मात पिता सुत भ्रात हीन जो दीन महा है । रक्षा हित दिन रैन तुझे ही टेर रहा है ॥
आंसू जिसके नाथ न कोई पूछन हारा । तुझमें तुझको छोड़ न जिसको और सहारा ॥ ३ ॥
जो दुखिया नित अश्रुबिन्दु की माल बनावे । आता तू नहिं निकट हाय कैसे पहिरावे ॥
जिसकी आशा सभी गई विधि गति से कुचली । जिसके मनकी एक न अब तक कुछ भी निकली ॥ ४ ॥
जिसको अपना इष्ट न जगमें सूझै कोई । जिसकी स्वामी बात न जगमें बूझै कोई ॥
पापी है जो महा न जिसका मन है बसमें । जान बूझ कर पाप करै फिर आवे कसमें ॥ ५ ॥
उसको तारो नाथ शरण में अब आया है । तेरा तज कर द्वार बहुत ही दुख पाया है ॥
अब भी तुमने नाथ "शील" को जो नहिं तारा । पतित उधारन नाम जगत् में व्यर्थ तम्हारा ॥ ६ ॥

भगवद्दर्शन

[ले०—श्रीयुत् यशोदानन्दन ओझा]

इस चराचर जगत् को दृष्टि गोचर करने से यही प्रतीत होता है कि इस महान् विश्व का रचयिता कोई पुरुष विशेष अवश्य है। जबसे सभ्यता का विकाश हुआ है तबसे यही ज्ञात होता है कि उपर्युक्त बात का ज्ञान सबसे पहले हमारे पूर्वज ऋषियों को हुआ था। इस बातका ज्ञान होते ही वे इस विषय का अनुसंधान करने लगे। तथा सहस्रों वर्ष तपश्चर्या में व्यतीत कर इस अपूर्व सृष्टि के रचयिता सच्चिदानन्द स्वरूप जगन्निवास परमेश्वर के दर्शन योगबल से किये. इस जगत् के प्रत्येक अणु परमाणु उस ज्योतिस्वरूप सच्चिदानंद ब्रह्म के अंश हैं। यह महान् विश्व इस परमेश्वर की इच्छा पर निर्भर है प्रत्येक वस्तु, जिसे हम अपने ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्रत्यक्ष कर सकते हैं, परमात्मा की माया को प्रकट करती है। प्रत्येक प्राणी में परमात्मा की ज्योति है। उपर्युक्त विषय अति गहन है। योगी योग में ध्यानावस्थित रहते हैं। दार्शनिक तत्व की परिभाषा करते हैं परन्तु परमेश्वर की माया का किसी किसी को ही बोध होता है। जिन्हें बोध होता है वे मायाजाल से अपने को छुड़ा कर परब्रह्म से मिलने की आशा से उसकी खोज में निकल पड़ते हैं, उनको घर द्वार से कुछ, प्रयोग नहीं। किन्तु ऐसे महात्मा बहुत कम होते हैं।

भगवान् के समीप पहुंचने के भिन्न भिन्न मार्ग हैं। सभी व्यक्ति ज्ञान मार्ग का अवलंबन नहीं कर सकते क्योंकि यह मार्ग कठिन होने से सभी का उद्देश्य पूरा नहीं कर सकता। सेवा मार्ग से मनुष्य भगवान् का शीघ्र दर्शन पा सकते हैं यह सब किसी को सुलभ है। ज्ञानी होने की यह प्रथम रीति है प्रभु अपने भक्तों की इच्छा शीघ्र पूर्ण करते हैं परन्तु भगवान् में निष्ठा यथार्थ रूपसे होनी चाहिए। नारद, वाल्मीकि, प्रह्लाद, ध्रुव इत्यादि भगवद्भक्तों की भक्ति से प्रसन्न होकर उनको दर्शन देना पड़ा था। इतना ही नहीं परमात्मा अपने भक्तों को दर्शन देने के लिए समय समय से प्रत्यक्ष रूपसे दर्शन भी देते हैं। उसीको अवतार वाद भी कहते हैं। अवतार लेकर भगवान् पृथ्वी के भारभूत दुष्टों का विनाश करते हैं।

भगवान् प्रत्येक समय में सब स्थानों में रहते हैं। अध्व काल के पाश उनका बंधन नहीं करते। परमात्मा को जो जहां सच्चे हृदय से ध्यान करता है वहां उसे दर्शन होते हैं।

परन्तु वर्तमान युगमें कलिकाल के प्रभाव से भगवान् में विश्वास कुछ व्यक्तियों का नहीं है। वे नाना प्रकार के उदाहरण वाग्जाल द्वारा समर्थन कर भगवान् की स्थिति या अस्तित्व में अश्रद्धा कराते हैं

इससे भगवान् के भक्तों को हताश नहीं होना चाहिए। भगवान् के विरोधी सृष्टि के आदि कालसे होते आए हैं परन्तु विरोधियों के विरोध करने से भगवान का अस्तित्व नष्ट नहीं हो सकता।

यहां पर एक बात का विशेष ध्यान रहना चाहिए वह यह है कि भगवान निष्काम भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। प्रत्येक मनुष्य का जन्म पुरुषार्थ करने के लिए हुआ है जो मनुष्य अपने कार्य नहीं करते उनसे भगवान् विमुख होजाते हैं। दिन रात में केवल एक लक्ष जाप करने से भगवान् प्रसन्न नहीं होते। सभी जीवात्मा को भगवान् के अंग प्रत्यंग समझ दया, परोपकार, परसेवा करनी अहंकार को स्थान नहीं देना चाहिए। परमात्मा का नाम लेकर उसी को अपना सेवा कार्य समर्पण करना चाहिए। परमात्मा ही ब्रह्मा रूप में जन्म देते, विष्णु रूप से पालन करते, तथा शिव रूपसे संहार करते हैं। भक्ति में मदभाव नहीं लाना चाहिए। जैसे कितने विष्णु भक्त शिवजी को नहीं पूजते, फिर कितने शिवभक्त विष्णु को नहीं मानते। यह नहीं होना चाहिए। जो जितना अज्ञान के तमसे ढका में है। वह उतना ही मदभाव रखता है। भगवान् के दर्शन भगवद्भक्तों की इच्छा पर निर्भर है। जैसा जो भगवान् को जिस रूप से देखना है उसे भगवान् उसी रूप से दर्शन देते हैं। ज्ञानी, भगवान् की लीला इस सृष्टि में देखकर उनकी कौशलता से प्रसन्न होते हैं तथा मनुष्य योनि में जन्म लेकर अपना अहोभाग्य समझते हैं कि उस परमाराध्य भगवान् की अनुकंपा का फल है कि हमारी आखों के सामने परमात्मा ने अपनी माया से आवृत्त विश्व को सन्मुख रखा है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने इस विश्व का यथार्थ दर्शन अपने परम भक्त अर्जुन को दिखाया था। इसी रूप का दर्शन ज्ञानी जन अपने ज्ञान चक्षु से मानस भवन देखते हैं। ज्ञानी को भगवान् सर्वत्र दीखते हैं। परन्तु अज्ञानी को संसार में तिल तिल स्थान देखने पर भी दर्शन नहीं होते।

---

* कबीर दास *

[ले०—श्री गंगा विष्णु पाण्डेय विद्या भूषण]

कबीर की उत्पत्ति के विषय में लोगों का बहुत मत भेद है। इन्हें कोई ब्राह्मण कोई विधवा और कोई जुलाहे का पुत्र कहते हैं, किन्तु कबीर मतानुयायियों का मत कुछ और है। वे कहते हैं कि इन्हें नवजात शिशुकी अवस्था में कोई काशी में गंगा के तटपर (या लहर तालाब के किनारे) डाल गया था। नीरु नामक जुलाहा उधर से निकला और इस हृष्ट पुष्ट सुन्दर बालक को देखकर अपने घर उठा लाया और अपनी स्त्री नीमा (या नूरी) को दे दिया नूरी के कोई लड़का नहीं था। अतः यह इस बालक को पाकर बड़ी प्रसन्न हुई और बड़े प्यार से इसका पालन पोषण करने लगी। यही आगे चल कर कबीर दासके नामसे संसार में प्रसिद्ध हुए। वे चाहे जिस जाति के हों किंतु महापुरुष थे और हिन्दू मुसलमानों को एक समान दृष्टि से देखते थे।

(जन्मकाल)

जैसा झगड़ा इनकी जाति के संबंध में है, वैसा ही इनके जन्म काल में भी है। डाक्टर हंटर ने इनका जन्म संवत् १४३७ और मृत्यु संवत् १५०५ माना है, रेवरेंड वेस्काट ने जन्म संवत् १४६७ और मृत्यु संवत् १५३५ माना है, और इनके यह शिष्य धर्मदास ने इनका जन्म संवत् १४५६ जेठ शुक्ल १५ सन्द्रवार तथा मृत्यु संवत् १५०५ (अनिश्चित) या १५७५ (निश्चित) माना है। इस हिसाब से ये ११६ वर्ष के होकर मरे। इस समय देहली के तख्त पर सिकंदर लोदीका शासन था।

(विवाह)

जुलाहे ने इन्हें पाला पोसा था इसलिए इन्हें लोग जुलाहा भले ही कहें किंतु वास्तव में ये कोई योग भ्रष्ट योगी ही थे और मेरा तो यह निश्चित मत है कि ये ब्राह्मण ही थे क्योंकि एक बार एक ब्राह्मण देवता अपनी विधवा कन्या को लेकर श्री रामानन्द स्वामी के दर्शन करने गये उन्होंने उसे आशीर्वाद देदिया कि पुत्रवती हो जब ब्राह्मण ने कहा महाराज ! यह तो विधवा है इससे तो इसके और मेरे कुलको कलंक लगेगा तो रामानन्द जी ने कहा, मैंने जो कुछ कहदिया है वह मिथ्या न होगा, संभव है यही वह बालक है और विधवा ने कलंक के डरसे वहां फेंक दिया हो। क्योंकि एक साधारण जुलाहे के बालक के ऐसे उच्च विचार हों यह सर्वथा असंभव है। अस्तु, सयाने होने पर इनके पालक पिता ने लोई नामक कन्या से इनका विवाह कर दिया। पैदायश जैसी कबीर की थी वैसी ही लोई की भी थी। यह एक वनखंडी वैरागीनी पालिता कन्या थी, लोई में लपेट कर इसे कोई डाल गया था और दयालु साधु ने इसे पाला था यह लोई में लपेटी हुई मिली थी इसी से साधु ने इसका नाम लोई रखा था। इसने सर्वदा कबीर का साथ दिया।

संगति

कुछ दिनके बाद इनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ और इसका नाम कमाल रखा गया और इसी प्रकार पुत्री का नाम कमाली हुआ। कबीर, अपने पालक पिता जुलाहे के यहां रहकर उसमें इतने घुलमिल गये थे कि उन्हें अपनी जाति पांति का पता ही न लग सका। और लड़के लड़कियों का नाम भी जुलाहों के सदृश कमाल कमाली पड़ गया। कबीर ने अपने को सदा काशी वासी जुलाहा ही कहा है मेरी समझ में यह उनकी उदारता और सरलता अथवा पालक पिता के प्रति कृतज्ञता है।

(गुरु)

कबीर का चित्त गृहस्थी में पहले से ही न लगता था, वे सर्वदा किसी सद्गुरु की तलाश में रहा करते थे किंतु कोई मिलता न था। एक बार उन्होंने सुना कि यहां कोई स्वामी रामानंद नाम के वैष्णव साधु रहते हैं। इनकी इच्छा उनसे दीक्षा लेने की हुई और इन्होंने वहां जाकर डरते डरते उनके शिष्यों से इसकी चर्चा की। इनको जुलाहा जानकर शिष्यों ने बहुत फटकारा। कबीर निराश होकर लौट आये किंतु अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। इन्हें ज्ञात हुआ कि रामानन्द प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त में उठकर गंगा स्नान करने जाते हैं। एकदिन ये मार्ग में पैठ गये, रामनन्द जी उधर निकले और

अंधेरा होने के कारण इनका पैर कबीर के ऊपर पड़ गया। रामानन्द जी ने समझा कि मेरे पैर से किसी प्राणी को कष्ट हुआ अतः उसे सांत्वना देने के लिए कहा, बेटा ! राम राम कहो। कबीर यही चाहते ही थे, उन्होंने इसे ही गुरु मंत्र समझा और अपने को रामानन्द का शिष्य कहने लगे। यही नहीं वैष्णवों के सदृश माला और तिलक धारण कर हरि कीर्तन भी करने लगे। शिष्यों ने ईर्षावश रामानंद जी को यह संवाद नमक मिर्च के साथ सुनाया और उनसे पूछा क्या आपने कबीर को गुरुमंत्र दिया है, उन्होंने कहा नहीं। मैंने उसे दीक्षा नहीं दी अब जब कभी वह तुम लोगों को कीर्तन करता हुआ मिले तो हमें इसकी सूचना देना हम उसके पास चलकर उसे दंड देंगे। एक दिन शिष्यों ने खबर दी चलिये, कबीर हरि कीर्तन कर रहा है और बीच बीच में आपका नाम लेकर अपने को आपका शिष्य कह रहा है। रामनंद जी गये, और उसको हरि कीर्तन करते देखकर अत्यंत क्रुद्ध हुए तथा खड़ाऊं फेंक कर मारी और बोले, क्यों रे धूर्त ! कब मैंने तुझे दीक्षा दी है, जो तू मुझे गुरु कहकर पुकारता है। कबीर दौड़कर उनके चरणों पर गिर पड़े और बोले गुरुजी ! मैं झूठ नहीं बोलता, मैं आपका ही शिष्य हूं। शायद आपको स्मरण नहीं है उस दिन रात को आपने नहीं कहा था कि "बेटा, राम राम कहो"। इनकी युक्ति युक्त बातें सुनकर रामानन्द बहुत प्रसन्न हुए और सबके सामने इन्हें अपना शिष्य स्वीकार कर लिया अब तो कबीर निश्चिंत होकर हरिकीर्तन करने लगे। ❀

(दयालुता)

कबीर, बड़े दयालु थे, निर्धन होते हुए भी ये परोपकार करने में नहीं चूकते थे, एक दिन घरमें अन्न नहीं था, इन्होंने जल्दी जल्दी एक वस्त्र तैयार किया और बाजार चल दिये। मार्ग में एक वृद्ध ब्राह्मण जाड़े से कांप रहा था उसे देखकर उन्हें दया आगई और वह वस्त्र उसे देदिया एवं प्रसन्नता पूर्वक घर लौट आये। मार्ग में यह सोच रहे थे घरमे दाना नहीं है, माता मेरा रास्ता देखती होगी किंतु यहां आकर इन्होंने जो कुछ देखा उससे उनकी बुद्धि चकरा गई। माता से बोले मां, तुमतो कहती थीं आज घरमें कुछ नहीं है फिर यह भोजन कैसे बन गया। माता बोली, बेटा कबीर, यह तुम क्या कह रहे हो, क्या तुम्हें याद नहीं, तुम्हीं ने तो एक आदमी के हाथ अभी अभी सब सामान भेजा है। कबीर ने उत्तर दिया, मां यह क्या स्वप्ने की सी बात कर रही हो। वस्त्र तो मैंने रास्ते में एक ब्राह्मण को दे दिया पैसा मेरे पास था नहीं फिर मैंने भेजा कहां से ? अच्छा समझ गया, यह सब काम मेरे रामका है, उनके बिना और कोई भी ऐसा करने को समर्थ नहीं है। बस, आजसे जो कुछ

❀ कुछ लोग रामानंद जी को इनके गुरु मानने में, आना कानी करते हैं किंतु मेरी समझ में तो इसमें कोई हानि नहीं क्योंकि रामानंद जी के वरदान से तो इनका विधवा के उदर से जन्म हो हुआ है फिर गुरु मानने में क्या बुरा है किसी किसी का मत है इनके गुरु शेखतकी और ऊंजी के पीर साहब थे किंतु मैं इससे सहमत नहीं हूं।

इन्हें मिले उन्हीं के नाम पर देदेना चाहिये, कलके लिए बचा रखना मूर्खता है। जिसने जन्म दिया है वह भोजन अवश्य देगा। उसदिन से वे वैसा ही करने लगे जो कुछ पैदा करते थे सब दान कर देते थे। इनके यहां जो आता था कभी खाली हाथ न जाता था इससे इनकी दान शीलता प्रसिद्ध होगई। यद्यपि कभी कभी इसके लिए इन्हें कठिनाई का सामना करना पड़ता था परंतु ये कभी विचलित नहीं हुए। कबीर दया मूर्ती थे और जीव दया तथा आत्म पूजा के पक्षपाती थे।

उपदेश प्रणाली

कबीर की उदारता से प्रसन्न होकर एक राजा इनका परम भक्त होगया और वह इन्हें बहुत सा धन देने लगा। कबीर ने कहा, मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। इसे निर्धनों में बांट दो। इससे उनका और तुम्हारा कल्याण होगा।

एक दिन किसी ने पूछा, महाराज ! गृहस्थी में रह कर भजन हो सकता है या नहीं ? कबीर ने कहा इसका उत्तर कल दिया जायगा। दूसरे दिन दोपहर को धूप में बैठकर आप उलझे हुए ताने को सुरझाने लगे और प्रकाश होते हुए भी अपनी स्त्री से दीपक ले आने के लिए कहा। प्रश्नकर्ता जी ठीक समय पर पहले ही से आगये थे और बैठे हुए यह तमाशा देख रहे थे। महाशय यह सुनकर बड़े आश्चर्य में पड़ गये और मनमें सोचने लगे कि कबीरदास पागल तो नहीं होगये। कबीर समझ गये और बोले भाई ! शंका की बात नहीं है, मैंने आपके ही प्रश्न का उत्तर दिया है किंतु ज्ञात होता है कि अभी आप समझे नहीं अच्छा। अब समझ लीजिये। मध्याह्न में दीपक की आवश्यकता न थी और न उससे मुझे कोई प्रकाश ही मिल सकता है फिर भी मेरी पत्नी आज्ञा पाते ही दीपक ले आई। सारांश यह है यदि ऐसी वशवर्तिनी पत्नी हो तो गृहस्थी में रहकर भी भजन हो सकता है। कबीर के उपदेश देने की रीति विचित्र थी उन्हें जो कुछ समझाना होता था प्रत्यक्ष रीति से समझा देते थे। कठिन से कठिन प्रश्नों का उत्तर वे इस ढंग से देते थे कि लोगों के हृदय में उतर जाता।

प्रभाव

कबीर की गणना सिद्धों में की जाती है जब वे तीर्थाटन करते हुए दिल्ली पहुंचे तो लोगों ने बादशाह सिकंदर लोधी को भड़का दिया कि यह पाखंडी है। बादशाह ने उन्हें दरबार में पकड़ मंगाया। दरबारियों ने कहा बादशाह सलामत को सलाम करो, कबीर ने उत्तर दिया मैं सबको सलाम नहीं करता एक को ही करता हूं। बादशाह नाराज होगया और कबीर के हाथ पैर बंधवा कर यमुना में फैंकवा दिया किंतु थोड़ी ही देर बाद वे तटपर घूमते दिखाई देने लगे। चिता में जलाने की आज्ञा दी किंतु वे जैसे के तैसे बैठे रहे और लकड़ियां राख होगईं। मस्त हाथी से कुचलवाने का फरमान दिया गया किंतु हाथी इन्हें देखते ही भाग खड़ा हुआ। इन बातों से सबके हृदयों पर कबीर का आतंक जम गया। बादशाह ने भी उनसे माफी मांगी।

एकबार घूमते घामते ये किसी साधु के आश्रम में पहुंचे इन्हें अतिथि समझ कर उन्होंने इनसे दूध पीने को कहा, कबीर ने इनकार करदिया और बोले थोड़ी देर बाद यहां और एक साधु आवेंगे यह उनके काम आवेगा। कबीर के यहां

बैठे ही हुए एक महात्मा वहां आ पहुंचे कबीर की इस भविष्य वाणी से लोग बहुत प्रभावित हुए।

(मरण)

सर्वत्र घूम घाम कर कबीरदास पुनः काशी पहुंचे। और अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए वहीं रहने लगे। अब तक जो सज्जन इनसे द्वेष करते थे वे भी अब इनको आदर की दृष्टि से देखने लगे। अंतिम समय कबीर ने अपने शिष्यों को एकत्रित करके कहा आज मेरी जीवन लीला समाप्त होती है, एक जुलाहे के यहां रहकर मैंने अपने कर्मबल से वैकुण्ठपद प्राप्त किया है, अब इस नश्वर शरीर को छोड़कर उस अनंत की शरण जाता हूं जहां से फिर आना नहीं होता। तुमलोग शान्ति पूर्वक मेरे उपदेशों पर चलना और संसार में उनका प्रचार करना। इसके पश्चात् मणिकर्णिका घाट पर एक चादर ओढ़कर पड़ रहे एवं सबके देखते २ परमात्मा में लीन होगये।

अपूर्ण।

विश्वास

लोग कहते हैं कि योरप के बड़े २ लोग नास्तिक हैं। ब्रैडला और हरबर्ट स्पेंसर यद्यपि ईसाइयों और मुसलमानों या और धर्म वालों के खुदा को न मानते थे, मगर उनमें यकीन और विश्वास अवश्य था और उन लोगों के चाल चलन आप लोगों के पंडितों, धार्मिक उपदेशकों और व्याख्याताओं से कहीं श्रेष्ठ थे।

ब्रैडला यद्यपि रामायण नहीं जानता था मगर उसका हृदय प्रेम से भरा था। आपके धार्मिक लोग अपने प्रेम को किसी मत विशेष या देश में ही परिच्छिन्न कर देते हैं, मगर उसका चित्त इंग्लिस्तान में ही परिच्छिन्न (घिराहुआ) न था बल्कि भारत के हित में भी अपना रक्त अर्पण कर रहा था प्रकृति के अटल नियम पर विश्वास रखता था। इसी विश्वास या ईमान की भारत वर्ष को भी आवश्यकता है। या गाली है कि तुम बेईमान हो, अर्थात् तुम्हारा ईमान नहीं है और ईमान अदृश्य वस्तु पर विश्वास लाने का नाम है, और यह ही धर्म विश्वास या इसलाम है, और बिना इसके कोई उन्नति नहीं कर सकता आर्किमेडेज़ यह कहा करता था कि (If i yet a point i shall overturn the whole world.) अगर मुझको एक मध्य बिन्दु केन्द्र) खड़े होने के लिये मिल जाय तो मैं सम्पूर्ण संसार को उलट दूंगा।

राम बतलाता है कि यह स्थिर मध्य बिन्दु तुम्हारे ही पास है। यदि तुम उस आत्मदेव को जो दूर से दूर और निकट से निकट है, जान लो तो वह कौनसी वस्तु है जिसको तुम नहीं कर सकते।

वह कौनसा-उकदा है, जो वा नहीं हो सकता।
हिम्मत करे इन्सान तो, क्या नहीं हो सकता॥

इस विश्वास को हृदय में स्थान दो और फिर जो चाहो सो करलो। क्योंकि अनन्त शक्ति का स्रोत तो तुम्हारे भीतर ही मौजूद है।

हक्सले का कथन है कि अगर तुम्हारी यह तर्क शक्ति तार्किकता और बुद्धि व विवेक शक्ति घटनाओं के जानने में सहायता नहीं करते तो।

बरीं अक्लो दानिश ब बायद गरेस्त।

अर्थात्-इस बुद्धि और विवेक शक्ति पर तो रोना उचित है। ऐसे तर्क को बदल दो, अक्ल को फैंक दो, मगर घटनाओं को आप बदल नहीं सकते।

आत्मा अर्थात् भीतर वाली शक्ति पर विश्वास रक्खो। टिटिहरी के मन में विश्वास आगया। उसने साहस किया कमर बांधी। समुद्र से सामना किया। और विजय पाई। एक कहानी है कि टिटिहरी के अंडे-बच्चे समुद्र बहा ले गया। उसने विचार किया कि समुद्र आज मेरे अंडे बच्चे बहा ले गया तो कल मेरे और सजातियों के बच्चों को भी बहा ले जायगा। इससे उत्तम है कि समुद्र का विनाश कर दिया जाय। ऐसा सोचकर समुद्र का जल उन पक्षियों ने अपनी चोंचों से भर २ के बाहर फेंकना आरम्भ किया और विपत्ति-काल में अपने उत्साह को भंग नहीं किया।

इतने में एक ऋषि जी वहां आये और चोंचों से समुद्र का पानी खाली करते देख कर कहा कि यह क्या मूर्खता का काम कर रहे हो क्या समुद्र को खाली कर सकते हो ? क्या अकेला चना भाड़ को फोड़ सकता है। इस मूर्खता के काम को छोड़ो इस पर उसे टिटिहरी ने उत्तर दिया कि महाराज ! आप देवर्षि होकर मुझको ऐसा नास्तिकपने का उपदेश करते हैं। आप हमारे शरीरों को देख रहे हैं। हमारे आत्मबल को नहीं देखते। यह उत्तर काकभुसुण्ड को महाराज दत्तात्रेय जी ने दिया था और कहा-यार, तुम तो कौवे ही रहे। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि सदैव हाड़ और चाम पर जाती है। शरीर तो मैं नहीं हूं। मैं तो वह हूं जिसका अन्त वेद भी नहीं पा सकते। आत्मदेव तो वह है जो कभी भी खत्म होने वाला नहीं। इस उत्तर को सुन कर ऋषि जी महाराज होश में आये और समुद्र से क्रोध करके बोले कि अरे इसके अंडे, बच्चे क्यों बहा लेगया। इस पर समुद्र ने झट अंडे बच्चे फेंक दिये। और कहा कि मैं तो मखौलबाज़ी (परिहास) करता था।

इस कहानी में अमर और अजर आत्मदेव में यकीन का होना तो विश्वास, मज़हब या इस-लाम है। बाकी सब कहानी, मत या अक़ीदा है किन्तु राम तो विश्वास ही को उत्तेजना देता है, और बात से उसको सरोकार नहीं।

अकेले फरहाद् ने नहर को काट कर बाद-शाह के महलों तक पहुंचा दिया। ये सब घटनाएं हैं। आप उन तसवीरों को देख सकते हैं जो फर-हाद् ने पहाड़ों पर नहर काटते समय बनाई थीं। सिवाय विश्वासवान् पुरुषों के दूसरे का यह काम नहीं। जिसको इस बातका विश्वास है कि मेरे भीतर आत्मा विद्यमान् है तो फिर वह कौनसी ग्रंथि है जो खुल नहीं सकती ! फिर कोई शक्ति ऐसी नहीं जो मेरे विरुद्ध हो सके। सूर्य हाथ बांधे खड़ा है और चन्द्रमा प्रणाम के लिये शिर झुका रहा है। ज़रा देखिये अकेले तो रामचन्द्र और उनके साथ एक भाई और सिता जी को समुद्र पार करके वापस लाना चाहते हैं। क्या यह काम सहज है। नाव नहीं, जहाज़ नहीं, मगर वाहरे वीर साहसी। कि जिनकी सेवा करने को वन्य पशु भी उद्यत हैं। बन्दर जैसे चंचल पशु भी आपकी सेवा में उपस्थित हैं।

पक्षी भी आपकी सेवा के लिये प्राण-विसर्जन किये देता है। गिलहरियां भी चोंच में बालू भर २ कर समुद्र पर पुल बांधने का प्रयत्न करतीं और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा करती हैं। अगर हरेक के हृदय में वही श्रद्धा उत्पन्न हो जाय जो राम में थी तो "कुमरियां आशिक हैं तेरी सरोवंदा है तेरा" वाली अवस्था सबकी होजाय। अगर इस बात का विश्वास नहीं आता कि "मैं वह ही हूं" तो उसका निश्चय तो होना ही चाहिये कि मेरे भीतर नहीं है। "जब मेरे भीतर नहीं है" तो मैं सबका स्वामी हूं और जो चाहूं सो कर सकता हूं। यह खयाल बड़ा ज़बरदस्त है और यह खयाल हृदय में हर समय रक्खे जिससे वह भीतर की शक्ति प्रगट होने लगती है। अमेरिका और इंगलैंड के बहुतेरे अस्पतालों में सरकारी तौर से ऐसी चिकित्साएं होगई हैं जिसमें केवल विचार ही की शक्ति से रोगी अच्छा कर दिया जाता है और बहुतों ने इस बातकी सौगंध खाई है कि हम आयु भर औषधिसेवन न करेंगे और अगर कोई बीमारी हो जायगी तो केवल विचार ही की शक्ति से उसको भगा देंगे। यह शक्ति यकीन है, यही विश्वास है।

आज कल की विचार-विद्या ने इस बातको सिद्ध कर दिया है कि मेज़ की जगह आपको घड़ी दिखलाई दे। क्या आपने इस आख्यायिका को नहीं सुना कि जेम्स साहब का डाक्टर पाल बन गया। तत्व वही है जो विश्वास की आंखों से दिखाई देता है। यदि देखना है तो उस आत्मा को देखो।

एक पिन्सपल की कला को देखो जिससे हज़ारों मनुष्य पल रहे हैं, और राष्ट्रिय सम्पत्ति बढ़ रही है। रेल वालों को लाभ, डाक वालों को लाभ। इस कला की हकीकत (वास्तविकता) कहां है? थोड़े में यह सब विकार भीतरी विकार है जो दिखाई नहीं देता। भीतर से आत्मा बराबर निर्विकार है।

जापान और अमेरिका की उन्नति का रहस्य उनकी बाहर की संपत्ति और वैभव के देखने से नहीं मालूम होता वरन् उन देशों के उदय का कारण उनके भीतर का परिवर्तन है। वह क्या है? यकीन या विश्वास है। सब जातियों और राष्ट्रों की उन्नति का मूल कारण उनकी आत्मा में है, शरीर तो केवल आवरण की तरह है।

तेंतीस करोड़ देव देवताओं को क्या ३३३लाख करोड़ देवताओं को बड़े माना करो, भला जब तक आप में भीतरी शक्ति जोश न मारेगी आपका कुछ भला न होगा। जिस समय आपके भीतर का आत्म बल जागेगा तो सारे देवता भी अपनी सेवा के लिये हाथ जोड़े खड़े पाओगे। अभी तुम उनको मानते हो, फिर वह तुमको मानेंगे।

कुतुब अगर जगह से टले तो टल जाए।
हिमालय बाद की ठोकर से भी फिसल जाए॥
अगरचे बहर भी जुगनू की दुम से जल जाए।
और आफताब भी कबूले-उरूज ढल जाए॥
कभी न साहबे हिम्मत का होसला टूटे।
कभी न भूले से अपनी जबीपै बल आए॥

इसी का नाम विश्वास, यकीन और परमेश्वर में भरोसा रखना है। जिस हृदय में यह विश्वास है वह भारी वस्तुओं की परवाह नहीं करता। वह घर ही क्या जिसमें दीपक न हो। वह ऊँट ही क्या जो बे नकेल हो, और वह दिल ही

क्या जिसमें विश्वास न हो।

कोई प्राणी या मनुष्य ही क्या जिस को ईश्वर, सत् या हकीकत में विश्वास न हो। जब विपत्ति आती है तो बलिदान की आवश्यकता होती है। हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, ईसाइयों सब में यत्र बलिदान की प्रथा प्रचलित है। एक बेचारे पशु (बकरे) को काट डाला या अग्नि में डाल दिया और कह दिया, यह बलिदान है। क्या बलिदान इसी का नाम है? नहीं २ सच्चा बलिदान तो यह है:-

कर निज करें तुमरी सेवा।
रसना तुमरो गुण गावें॥

प्रेम-प्रताप

(रचयिता श्री चतुर्वेदी राम चन्द्रशर्मा 'विशारद' सम्पादक वाणी खरगोन)

१

माता मुख चुमती है लालका उमंग भरा, देखती उदास जहां छाता अनुताप है।
कूकती है कोयल वसंत का प्रभाव देख, मेघ-गर्जना को सुन नाचता कलाप है॥
फूल जाते कमल दिनेश के विलोकते ही, चलकी निशाको देख करती विलाप है।
देख पूर्ण इंदु सिंधु मानता सौभाग्य बड़ा, केवल विशुद्ध सखे! प्रेम का प्रताप है॥

२

होता यदि प्रेम नहीं राम जानकी के लिये, दुर्विलंघ्य लांघ, लंका, सिंधुपार जाते क्यों?
किया था विचार नीच-ऊंच का न लेश मात्र, शबरी के रामचन्द्र जूठे बेर खाते क्यों॥
लोग कहते थे जिसे निंद्य और महानीच, निर्मल निषाद को सप्रेम अपनाते क्यों?
होता प्रेम का महत्व विश्व में प्रधान नहीं, मानव सहर्ष आज प्रेम-गान गाते क्यों॥

प्रेम

[ले० पं० नन्दकुमार मिश्र जी]

अहो! ब्रह्मनिर्मित अनिर्वचनीय सुललित प्रेम शब्द अलौकिक स्वाभिधेय वाचक है। जिस प्रकार वाणी से ब्रह्मका वर्णन होना असंभव है तथा जैसे पंगु मनुष्य के लिए गिरीराज हिमालय का शिखिर अलभ्य है उसी प्रकार याथार्थ्य प्रेमशब्द का वर्णन भी मुखोच्चरित शब्दों से होना दुःसाध्य है। यथा प्राचीन मनीषियों से उच्चरित (अनुभव योग्यं प्रेम स्वरूपम्) इस लक्षणानुसार प्रेम केवल अनुभव करने की वस्तु है। याथार्थ्य प्रेम शब्द का वर्णन इस नश्वर जगत में वर्तमान साधारण मनीषियों से नहीं हो सकता। वास्तव में प्रेम सगुण तथा कामना रहित प्रतिक्षण वर्द्धिष्णु अनश्वर तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है। प्रेम का अन्त नहीं है। प्रेमी का भाव यही अपने मन में रहता है कि मुझ में प्रेम की न्यूनता है। किसी समय प्रेमी मनुष्यों के अपना प्रेम बढ़ा हुआ दृष्टिपथ में नहीं आता। अतएव अनीर्वचनीय प्रेम, प्रेमी पात्र को पाकर अहर्निश जलसंचित लता कदम्ब की नाईं वर्द्धिष्णु रहता है। जैसे जलार्णव में मग्न मनुष्यों की वाणी तभी तक निःसृत होती है जब तक मुख जल से बाह्य वर्तमान है। जल में मग्न होजाने पर वाणी का शब्द श्रवण होना बहुत कठिन है उस मनुष्य का शरीर भी दृष्टि पथ में नहीं आता। वैसे ही प्रेमार्णव में मग्न मनुष्यों से प्रेम शब्द का याथार्थ्याभिधेय वर्णन नहीं होता। तथा जैसे मूक माधुर्यादि षटरस भोजन से प्रसन्न होता है हंसता है परन्तु उस पदार्थ का स्वाद वर्णन नहीं कर सकता इसी प्रकार प्रेमासक्त मनुष्य प्रेम का अनुभव कर आनन्द में मग्न होता है परंच प्रेम में मग्नता के कारण अन्यजनों के प्रति प्रगट नहीं कर सकता। प्रेम एक ऐसा प्रिय पदार्थ है कि वह प्रेमास्पद के दोषों को देखने के लिए दौड़ने नहीं देता। प्रेमियों से दत्तपदार्थ सुधा से भी तरल, कल्पवृक्ष से भी फलद, चन्द्रमा से भी मनोहर प्रियपात्र के लिये प्रियतम होता है और उसके सामने उसके लक्षाधिक दोष परमाणु से भी सूक्ष्मतम हैं सुन्दर दीर्घिकाओं में समुत्पन्न शैवालों से समाच्छादित कमल सा मनोहर कलङ्काकित कलानिधि के समान प्रतीत होता है। केवल मनुष्य मात्र ही के लिये नहीं किन्तु सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा ने भी इसे स्वीकार किया है। जिस समय प्रभु रामचन्द्र जी स्वजनक मुनिदेश से जंगलों में राक्षस पुञ्जों को विध्वंस करते हुए विचरते थे कि अचानक उसी स्थल पर एक शूद्रा शिवरी अपने प्रियतम प्यारे प्रभु के लिये जंगलों में घूमती थी। ऋषियों से उस सच्चिदानन्द आनन्दकन्द अयोध्या

बिहारी प्रभु का अरण्यागमन कर्ण गोचर में सुन जैसे बहुत कालसे पिपासित चातकी अनन्य जलाभिलाषिणी स्वाति की बिन्दुपाकर सन्तुष्ट होती है उसी तरह अनन्याभिलाषिणी उसके हृदय कमल का विकास हुआ। और वह बदरी फलों को तोड़कर मधुरता के लिये मुख से स्वाद ग्रहण कर मधुरफलों से दोनों को भरकर रखती थी कि अचानक प्रभु के पादारविन्द उस नीच शिवरी को कृतार्थ करने के लिये समुपस्थित हुये। प्रभु ने उस बेरों से भरे हुए दोनों को हाथों में लेकर अविरल भक्ति की प्रशंसा करते हुए जैसे ग्रीष्मऋतु में अम्बरमणि के असह्य किरणों से प्रतप्त मनुष्यों के हिमालय, निर्धन के लिये कुबेर का भण्डार मिल जाय तद्वत् प्रभु ने उसे पाकर आनन्द सागर में मग्न हो उसे भक्षण किया? परञ्च उच्छिष्टता की तरफ ध्यान नहीं दिया। प्रेमियो ! उसी तरह यदि हम लोग भी प्रेम शब्दार्थ समझकर प्रभु के पद पंकजरूपी प्रेम रजा से हृदय को सुशोभित करेंगे तो वह दिन दूर नहीं है कि प्रभु गरुड़ त्याग ग्राह के लिये जैसे दौड़े थे तो फिर क्या मुझे संकटों से व्याप्त देखकर न दौड़ेंगे। प्रेमियो ! इस आकर्षण मन्त्ररूपी आनन्द कन्द ब्रजचन्द श्रीकृष्ण जी में प्रेम ही के कारण अतिदीन मन मलीन सुदामा जी महाधनी हो चुके हैं। यथा विप्रकुलाभास्कर सुदामा जी कि ललित कथा में प्राचीन मनीषियों की सम्मति को अपने हृदय कमल में अंगीकार करके निर्जाणसहायक मनीषा से वर्णन करता हूं। महाराष्ट्र प्रान्तान्तर्गत द्राविड़देशीय परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र जी के गुरु भ्राता दरिद्रता की पूर्णकृपा से आक्रान्त विष्णु भक्त परायण श्री सुदामा जी अपनी पातिव्रतपरायणा सुन्दरी नितान्त दरिद्रता से कान्त प्रिया के साथ उस पुरी में रहते थे। उस समय उनके समान सन्तोषी विप्र दृष्टिपथ में नहीं आते थे। क्योंकि अति दरिद्रयता से पीड़ित होने पर उनकी प्रिया करबद्ध हो पति के चरण युगल को प्रणाम करके बोली। नाथ ! आप इस दासी के लघुविचार को कृपया अपने हृदय कमल में स्थान दे। मैं आपके ही मुखारविन्द से निःसृतपीयूषवाणी को कर्णपुट में भरी हूं। आपकी स्वाभाविक वाणी यही है कि प्रिये ! मेरा अकृत्रिममित्र दुनियां के दुःख दलनकर्ता लोकपति कृष्ण है। यदि यह आपकी बात सच्ची है तब वृथा मित्रके समक्ष में इस असह्य वेदना को अनुभव करते हैं। प्रिया की ललित वाणी सुनकर सन्तोषामृत से पूर्ण वाक्य में बोले। प्रिये ! कदापि मित्रों के प्रति याचना न करनी चाहिये। क्योंकि ये मित्रों का दूषण है। यह सुनकर साधारणस्त्रियों की तरह लोभाक्रान्त हुई। तब लाचार होकर मित्र के प्रति याचना करने के लिये प्रस्तुत सुदामा भेंट के लिये अति विकल हुए। तब उनकी सुलक्षणा प्रिया ने अपनी किसी प्रतिवेशिनी से भेंटार्थ चावल मांग कर अपने प्रभु के फटे कपड़े में बांधदी। सुदामा जी कहते हैं।

अहो विधाता विपति विदारण,
क्यों मोहि देत दुःख विमुकारण।
जो मैं कहीं घर फिरि जांऊ,
नारी न चैन देई तेहि ठाऊं॥

इत्यादि भगवद्विषयारति को मार्ग में स्मरण करते हुए सर्वतः समुद्रों की अपार लहर को देखकर सुवर्णमय मणिजटित सुमेरु के समान उच्च अट्टालिका वाली द्वारकापुरी में प्रवेश करना दुःसाध्य समझते हुए पुन्नागवृक्ष की शीतल छाया में सूर्य्य के प्रखर किरण को न सहते हुए सोगये। अन्तर्यामि

परमात्मा कृष्ण ने अपनी आकर्षण शक्तिसे शयालु सुदामा जी को अपनी द्वारकापुरी में खींचलिया। सज्जनों ! थोड़ी भी दृष्टि इस निर्धन विप्र के ऊपर परमात्मा के प्रेम में दें। जब सुदामा गहरी नींद से विमुक्त हुए तब अपने को द्वारकापुरी में आया हुआ देखकर अचंभित हुए। बाद कुछ धीरता धारण कर पुरवासियों से कृष्ण का तात्कालिकवास-भवन पूछते हुए वहां गये जहां ड्योढ़ीदार अहर्निश भगवद्भक्तोपासक रक्षक था। सुदामा की दशा देखकर करुणस्वर में बोला। हे प्रभो ! आपने किस देश से इस भूमि को सौभाग्यवती किया। यह सुन कहे महाराज शीघ्र प्रभु के पास मेरा आगमन विज्ञापित करें। द्वारपाल झट प्रभु के पास जाकर बोला। भगवन् ! आपके प्राचीन अकृत्रिम मित्र विप्रकुल भूषण सुदामा जी द्वारपर दर्शनार्थ आये हैं। यह सुनते ही सब सभासदों को विसर्जन करते हुए ड्योढ़ी पर आये और पूर्ववाक्य स्मरण करते हुए अपने मनमें विलखने लगे। जैसे कहा है:-

जो न मित्र दुख होहिं दुःखारी।
तेहि विलोकत पातक भारी॥

इत्यादि वचनों को स्मरण करते हुए सुदामा जी के विपादिका रुजाक्रान्ता चरणों को अपने अश्रु-धारा से प्रक्षालन किया। तदुपरान्त स्नान वस्त्रादिक से अलंकृत करके कुशल पूछने लगे। हे महाराज ! जिसदिन से आपने हमको परित्याग किया उसदिन से परमात्मा की अतुलित कारुण्यतया आज दर्शन हुआ। आप इतने दीनताक्रान्त होने पर भी मेरी तृप्ति के लिये अवश्य कुछ लाये होंगे। सुदामा जी लज्जा से भगवान् के लिये तुषमय उस चावल को नहीं देते थे। क्योंकि अनेक स्वादिष्ट मिष्टान्नादि भी रुचि कारक नहीं होते तो यह मेरी दी हुई भेंट अवश्य अमान्य होगी। तो भी प्रेमी पालक भगवान श्रीकृष्ण जी ने बलात्कार उस चावल में से दो मुट्ठी भोजन किये। जब पुनः तृतीय मुट्ठी लेनी चाही कि अचानक समुपस्थित रुक्मणी ने हाथ धर लिया, और बोली हे प्रभो ! अब इस ब्राह्मण के लिये दो लोक आप दे चुके। यदि तीसरालोक भी समर्पण कर देंगे तो फिर हम लोग कहां रहेंगे। कृष्णचन्द्र भी साधारण मनुष्यों के समान स्त्री के वाक्य पालन करता हुआ तीसरी मुष्टिका छोड़दी। कृष्णचन्द्र ने अपने मित्रके साथ सुवर्णपात्र में षड्रसादि पूर्ण अन्न भोजन किये। तदुपरान्त क्षीरफेन के तुल्य स्वच्छविस्तरे के ऊपर सुदामा को गहरी नींद आगई। तब भगवान् ने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा। हे विश्वकर्मन ! आज रात्रि ही में सम्पूर्ण रत्न से पूर्ण द्वारका के तुल्य सुदामापुरी को बनादो। यह सुनकर शीघ्र ही मुहूर्तमात्र में बनाकर भगवान् के पास आये। कुछ दिन रहकर सुदामा जी भगवान से आज्ञा लेकर अपनी पुरी की ओर चले। अपनी पुरी का दृश्य विलक्षणरत्न जड़ित अद्वितीय स्वर्ग के तुल्य देखकर अचंभित हुए। पुनः प्रिया के समझाने पर सम्पत्ति का भोग करने में तत्पर हुए। प्रिय सज्जनों ! मेरे कहने का सारांश वास्तव में यही है कि अलभ्य वस्तु भी प्रेमोपासक होने से प्राप्त हो सकती है। अतः मैंने आप लोगों के सामने अपनी प्रतिभा का विकाश किया। अन्यथा सुदामा से अलभ्य सम्पत्ति प्राप्ति नहीं हो सकती थी।

मानस रामायण के एक सोरठा पर विचार

[ले० महावीर प्रसाद 'वनरंगवली' श्री वास्तव]

सोरठा-मूक होहिं वाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सुदयाल, द्रवहु सकल कलि मलदहन॥

इस सोरठा में 'जासु कृपासु दयाल' में जासु शब्द किस देवता का संकेत है यह बात सोरठे में ग्रंथकार ने स्पष्ट नहीं की। इस कारण युक्तियों द्वारा अनुमान करके रामायण जी के वक्ताओं तथा टीकाकारों ने इस सम्बन्ध में दो भिन्न मत प्रगट किये हैं। किसी २ के अनुमान में यह सोरठा भगवान् विष्णु की वन्दना में है। और किसी २ के मत से यह सोरठा 'सूर्य्य' की वन्दना में है।

जिनके विचार से यह सोरठा 'सूर्य्य' की वन्दना में है। वे अपने अनुमान के लिये निम्न लिखित युक्तियां देते हैं।

१-अयोध्यावासी पंच देवोपासक हैं-यथा

करि मज्जन पूजहिं नर नारी।
गणपति गौरी पुरारि तमारी॥
रमारमण पद वन्दि बहोरी।
विनवहिं अंजलि अंचल जोरी॥

इससे उन्हीं का अनुकरण करते हुये गोस्वामी जी ने ग्रन्थ के आरम्भ में चार सोरठा में पंच देवों की वन्दना की है। पहले सोरठा में गणेश जी की वन्दना, दूसरे में सूर्य्य की वन्दना, तीसरे सोरठा में विष्णु वन्दना, चौथे में 'उमारमण' शब्द से शिव और शक्ति की वन्दना आगई।

२-विनय पत्रिका में प्रारंभ में गणेश जी की वन्दना के पश्चात् सूर्य्य देव की वन्दना पाई जाती है। यहां पर भी उक्त सोरठा गणेश जी वन्दना के पश्चात् है। इस प्रकार विनय पत्रिका के क्रम से भी यह अनुमान किया जा सकता है। कि उक्त सोरठा सूर्य्य देव की वन्दना में ही होगा।

परन्तु विचार करने पर यहां पंच देवोपासना के क्रम का आरोपण ठीक नहीं जचता। कारण कि:-

१-अयोध्या वासियों के लिये जहां पंच देवों के पूजन का वर्णन है। वह गृहस्थ धर्मानुसार है, गृहस्थ धर्म में यथा स्थान पंच देव ही क्या और भी अनेक देवी देवताओं का पूजन हुआ ही करता है। यथा-

पूजे ग्राम देवि सुरनागा।
कहेउ बहोरि देन बलि भागा।

पर गोस्वामी जी ने वन्दना प्रकरण में पंच देव का क्रम नहीं रक्खा। प्रथम, श्लोकों में ही, प्रथम 'वाणी विनायक' की वन्दना करके, भवानी शंकर की वन्दना करते हैं। इसके पश्चात् गुरु वन्दना, सूर्य्य वन्दना का श्लोक कोई नहीं है। इस प्रकार पंच देवों का क्रम प्रारम्भ के श्लोक में भी नहीं पाया जाता।

२-विनय पत्रिका में भी पंच देवों का क्रम नहीं पाया जाता। वहां पर प्रारम्भ में गणेश जी की वन्दना के पश्चात् सूर्य्य देव की वन्दना अवश्य है। पर इसके पश्चात् शिव की तथा शक्ति की वन्दना करके गंगा, यमुना, तथा हनुमान जी की

वन्दना के पद आजाते हैं, पंचदेवों का क्रम नहीं रहता।

३-चारों सोरठों में पंचदेवों के क्रम से जो अनुमान किया जाता है उसमें भी शक्ति की वन्दना यथेष्ट रूप से नहीं आती।

चौथे सोरठा में 'उमारमण' शब्द में ही शक्ति की वन्दना मान ली जाती है। पर पंच देवोपासना के क्रम में 'शक्ति' का स्थान स्वतन्त्र हुआ करता है। उस क्रम के अनुसार शक्ति की वन्दना का भी एक पृथक् सोरठा होना चाहिये।

इस प्रकार चार सोरठा में पंच देवों के क्रम की कल्पना करके उक्त दूसरे सोरठा को सूर्य की वन्दना अनुमान करना संगत नहीं प्रतीत होता।

अब यह अनुमान, कि उक्त सोरठा विष्णु भगवान् की वन्दना में है विचार करने पर ठीक जचता है। कारण कि:-

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानंदमाधवम्॥

यह श्लोक प्रसिद्ध ही है। उक्त सोरठा ठीक इस श्लोक का भाषानुवाद ही है। अंतर इतना ही है कि इस श्लोक में 'परमानंद माधवं' विष्णु भगवान् का नाम स्पष्ट है। पर सोरठा में नाम स्पष्ट न करके:-

'सो दयालु, द्रवहु सकल कलिमल दहन'

कह कर ही संकेत किया है।

१-गोस्वामी जी के समकालीन महात्मा सूरदास जी ने भी सूर सागर में ठीक इसी ढंग का पद कहा है। और यह पद भी भगवान 'विष्णु' की ही वन्दना में है। यथा-

चरण कमल बन्दौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्धरे को सब कछु दरसाई।
बहिरा सुनै गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई॥
सूरदास स्वामी करुणामय, बार २ बन्दौं तेहि पाई॥

३-उक्त सोरठा-विष्णु भगवान् की वंदना के सोरठा के साथ भी है। दोनों सोरठों को एक साथ मिलाकर पढने और अर्थ करने पर दोनों सोरठों में कहे हुये सब विशेषण भगवान् विष्णु के लिये ही हैं। ऐसा अनुभव करने में कोई क्लिष्ट कल्पना भी नहीं प्रतीत होती। दोनों सोरठा एक साथ निम्न लिखित इस प्रकार मिले हुये है।

मूक होहिं बाचाल, पंगु चढै गिरिवर गहन।
जासु कृपासु दयाल, द्रवहु सकल कलिमल दहन॥
नील सरोरुह श्याम, तरुण अरुण वारिज नयन॥
करहु सो मम उर धाम, सदा क्षीर सागर शयन।

अब जबकि चार सोरठों में गणेश तथा शिवजी की वन्दना में स्वतन्त्र रूप से एक २ सोरठा कहा गया, तो उसी क्रम में विष्णु भगवान् की वन्दना दो सोरठों में करने में विशेष भाव क्या हो सकता है? यह प्रश्न हो सकता है। पर विचार करने पर इसका समाधान भी हो जाता है, सो इस प्रकार की विष्णु भगवान् (त्रिदेवगत विष्णु) का वर्णन रामायण जी में वैकुंठ और क्षीराब्धि के निवास संबंध से दो प्रकार से आया है। कहीं २ पर उन्हें 'पुर वैकुंठ निवासी, और कहीं क्षीर सागर शायी कहा गया है।

अतएव रामायण में विष्णु भगवान का वर्णन दो रूप से प्रधान होने के कारण उनकी वन्दना में दो सोरठे कहना उचित ही है।

एक प्रश्न और हो सकता है कि यदि वैकुंठ निवासी तथा 'क्षीर समुद्र शायी' दो रूपों को लक्ष्य करके विष्णु भगवान् की वन्दना में दो सोरठा कहे तो जैसे आगे के सोरठा में 'सदा क्षीर

सागर शयन' स्पष्ट किया वैसे ही पहले दोहा में 'जासु कृपासु दयाल' इस सांकेति शब्द की जगह बैकुंठ निवासी विष्णु स्पष्ट क्यों न कर दिया ?

इसका उत्तर यह है कि यदि गणेश और शिव की तरह विष्णु वन्दना के दोनों सोरठों में 'बैकुण्ठ निवासी' और 'क्षीर सागर शायी' को बिल्कुल पृथक् २ स्वतंत्र रूप दे देते, तो गणेश और शिव की तरह 'बैकुंठ वासी' और 'क्षीर सागर शायी' भी पृथक् २ दो देवता सूचित हो जाते, पर वास्तव में यह दो पृथक् देवता नहीं हैं। केवल स्थान और निवास की विशेषता से एक ही त्रिदेवगत विष्णु का दो तरह से वर्णन आया है। अतएव इस भेद की संभावना को दूर रखने के हेतु-पहले सोरठा में कुछ नाम स्पष्ट न करके दूसरे सोरठा में 'क्षीर सागर शयन' स्पष्ट किया। इस 'क्षीर सागर शयन में बैकुण्ठ निवासी का भी सन्निवेश हो गया। क्योंकि जो क्षीर सागर शायी हैं, वही बैकुण्ठ निवासी है।

इस प्रकार दो स्थानों की विशेषता से वन्दना दो सोरठों में की, पर साथ ही उनका ऐक्य स्थापित करते हुये नाम एक ही जगह 'क्षीर सागर शयन' स्पष्ट किया।

अब एक बात इस स्थान में और मर्म की है कि पद्म पुराण में प्रसंग सुना जाता है कि जलंधर समुद्र का पुत्र था, जब देवताओं से जलंधर की लड़ाई होने लगी उस समय इन्द्र की प्रार्थना से बैकुण्ठ वासी त्रिदेवगत विष्णु भी देवताओं की सहायता में आये। विष्णुप्रिया लक्ष्मी भी सिंधु की कन्या है। यह बात प्रसिद्ध ही है। युद्ध में किसी विशेष बात पर भगवान विष्णु ने जलंधर से वर मांगने को कहा उस समय जलंधर ने यह वरदान मांगा कि जिस प्रकार मेरी बहन (सिंधु सुता लक्ष्मी) के सहित आप बैकुण्ठ में निवास करते हैं। उसी प्रकार क्षीर समुद्र (श्वेत द्वीप) में भी मेरे स्थान में निवास स्वीकार कीजिये। इसपर एवमस्तु कह कर भगवान विष्णु ने क्षीर समुद्र में जलंधर के स्थान में निवास किया, वहीं पर जलंधर की पत्नी वृन्दा से छल करके देव दुखदाई असुर जलंधर का वध कर देवताओं को अभय किया। और उसी समय से क्षीर समुद्र में निवास कर क्षीर 'सागर शायी' कहलाये। इस तरह से बैकुण्ठ-भगवान विष्णु का निज स्थान और क्षीर समुद्र ससुराल का स्थान हुआ।

अब ससुराल का नाम लेलेने से उसके साथ निज गृह आही जाता है। क्यों कि घर पहले, और स्त्री संबंध से ससुराल पीछे प्राप्त हुआ करती है।

इसी से इस प्रसंग में दोनों सोरठों में स्थान भेद से 'बैकुण्ठ वासी' और 'क्षीर सागर शायी' दोनों प्रकार से विष्णु भगवान की वन्दना का लक्ष्य करके विष्णु वन्दना में दो सोरठा कहे। पर दोनों रूपों की अभेदता सूचित करने के लिये एक ही नाम से परिचय देना चाहा, तो बैकुण्ठ का संबंध न कहकर 'क्षीर सागर शयन' से परिचय दिया। क्योंकि ससुराल के स्थान का परिचय देने से घर का स्थान 'बैकुण्ठ' इसके साथ ही समझ लिया जा सकता है।

इस प्रकार उक्त तृतीय सोरठा-सूर्य की वन्दना में न होकर विष्णु भगवान की ही वंदना में है यह ठीक प्रतीत होता है।

—

योग साधन

[ले०—श्रीस्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

रामायण का १०८ बार स्वाध्याय कर जाओ परन्तु अभ्यास एकाग्रभाव और ब्रह्मचर्य साधन करते हुए करना आवश्यक है। यह स्वाध्याय तीन घण्टे प्रतिदिन करने से ३ वर्ष में समाप्त हो सकता है। एक मास में समस्त रामायण का पाठ हो सकता है। श्रद्धा भक्ति से पाठ करने से श्रीराम के दर्शन प्राप्त हो सकते हैं।

कलकत्ते में एक योगी आया था उसने विश्व-विद्यालय भवन में खेल दिखाया था वह तेज़ाब को खाजाता था, कीलों को निगल जाता था, और शीशे के टुकड़े चबा जाता था। यह समाचार सेठ श्रीनिवास पोद्दार ने अपनी आंखों देखा हमको सुनाया था। यह नाइट्रिक ऐसिड को शहद की भान्ति चाट जाता था परन्तु वह व्यापारी आदमी था। वह यह खेल प्रत्येक व्यक्ति को दिखा सकता था जो उसे ३०) रुपए दे सकता था। इसमें अध्यात्मिकता का क्या अंश हो सकता है? जहां व्यापार हो वहां वास्तविक योग का क्या काम हो सकता है। वह योगी अपनी क्रिया में असावधानी करने से रंगून में मरगया। इन क्रियाओं में आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह सम्मोहनी विद्या या इन्द्रजाल व प्रेतविद्या समझनी चाहिए। ऐसी बूटियां भी हैं जो तेज़ाब के प्रभाव को रोक लेती हैं।

हठ योग की जड़ समाधी एक प्रकार की निद्रा है। इस समाधि से आत्मज्ञान नहीं होता। यह समाधि खेचरी मुद्रा के साधन से प्राप्त हो सकती है। इसमें सन्देह नहीं यह कठिन योग की क्रिया है परन्तु इससे संस्कारों और वासनाओं की निवृत्ति नहीं होती और नहीं आत्म ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार के हठ योगी व्यापारी आदमी होजाते हैं और इनकी उन्नति नहीं होती। यह नाम और माया के पीछे फिरते हैं और अन्त में इनका पतन होजाता है।

साइनोर मस्सोलोनी एक साधारण समाजिक अवस्था से उन्नति करके इटली का भाग्य विधाता बन गया। वह एक पत्रका सम्पादक था, अब वह संसार की शक्तियों की आंखों में भयानक मनुष्य बन रहा है। वह बड़े दृढ़ इरादे का और कठोर प्रकृति का पुरुष है यदि उसकी मानसिक शक्ति ओज: शक्ति में परिवर्तित होजावे, यदि वह योग का अभ्यास करने लगे और उसका ध्यान अन्तरात्मा की तरफ चलाजावे तो निस्सन्देह वह महान् योगी बन सकता है। उसकी नितान्त निर्भयता ऐसी सम्पत्ति जिसके कारण वह थोड़े ही काल में आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है। मेरे प्यारे निर्भीक मस्सोलोनी! क्या तुम सच्चे योगी होना नहीं

चाहते ? क्या तुम युद्ध को बन्द नहीं करना चाहते ? क्या तुम शान्ति और सत्य के पथ पर चलना पसन्द नहीं करते ?

बिना साधारण गणित विद्या के सीखे बीज गणित नहीं आसकता। बिना लघुसिद्धान्त और तर्क संग्रह के पढ़े काव्य में प्रवेश नहीं हो सकता। इसी प्रकार बिना व्याकरण व न्याय के वेदान्त के ग्रन्थों का भी अध्ययन नहीं हो सकता। इसी प्रकार सगुण उपासना के बिना निर्गुण ब्रह्म की उपासना का होना भी असम्भव है। दृश्य के द्वारा ही हम अदृश्य और अज्ञात तक पहुंच सकते हैं।

बदला लेना द्वेष की भावना है। ईंट के बदले पत्थर, लात के बदले घूंसा, यह द्वेष की वृत्ति का द्योतक है। यह प्रतिज्ञा करना कि मैं उसको दण्ड दिए बिना न रहूंगा या मैं उसका नाश कर-दूंगा अहंकार की भावना है। सबको मेरे समान ही कष्ट भोगना चाहिए यह ईर्षा का भाव है। जो आनन्द मैं भोग रहा हूं वह आनन्द और किसी को प्राप्त न हो यह असूया है।

यदि हजार राजसूय-यज्ञ और सत्य को तुला में रखकर तोलाजावे तो सत्य निस्सन्देह हजार राजसूय-यज्ञ से बढ़ कर रहेगा। यही कारण है कि श्रुति कहती है 'सत्यम् जयते नानृतं' युधिष्ठिर जिसने एकबार मिश्रित झूठ बोल दिया था नर्क को देखने का अधिकारी बना।

प्राण ज्येष्ठ है क्योंकि यह अपनी क्रिया बालक के उत्पन्न होते ही आरम्भ करता है। अन्य इन्द्रियों की क्रिया उस समय आरम्भ होती है जबकि उनके गोलक बन जाते हैं। इसीलिए उपनिषद् में प्राण को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कहा है। यह श्रेष्ठ इसलिए है कि इसने इन्द्रियों की और मन की लड़ाई में विजय प्राप्त की थी। मन और इन्द्रियों ने एक भाव से कहा कि प्राण हम तेरे बिना जीवित नहीं रह सकते। तुझको धन्य है। तू शरीर में वास कर और बाहर मत जा। हम तेरी सेवा करेंगे। हम निश्चय तेरी श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। जब गाढ सुषुप्ति में मन की क्रिया बन्द होजाती है उस समय भी प्राण अपना काम करते रहते हैं।

सांख्य दर्शन का मत है कि प्राण तत्व का प्रथक् अस्तित्व नहीं है। प्राण सब इन्द्रियों की क्रिया का फल है।

कुछ वेदान्त के जिज्ञासु शरीर की परवाह नहीं करते। यह बड़ी भूल है। वह कहते हैं "हमको शरीर का मोह नहीं है।" ऐसे मनुष्यों को भगवान् विष्णु की वार्तालाप पर ध्यान देना चाहिए जो उन्होंने प्रह्लाद के प्रति कही हैं "अय ! प्रह्लाद अपने शरीर का ध्यान कर। तू इस बाल्यावस्था में अपने शरीर को त्यागने का क्यों खयाल कर रहा है ? जब तुझे विषयों में आसक्ति ही नहीं है तब तेरा शरीर चाहे रहे चाहे जावे। समाधि से उठ खड़ा हो। अपने शरीर से संसार में न्याय कर और जीवन मुक्ति का आनन्द ले और संसार के बोझ से प्रथक् रह।"

जब इड़ा नाड़ी चलती हो तो पश्चिम और दक्षिण की तरफ चलना शुभ होता है और पिंगला के चलने में पूरब और उत्तर का गमन श्रेष्ठ रहता है।

जब मन, वाणी, आंख और कान सोते रहते हैं तो प्राण क्रिया करते रहते हैं। प्राण को कौन चलाता है। और इसे कौन आश्रय देता है ? यह ब्रह्म है। वही सबकी की योनी है।

अमर--आशा

[रचियता महाकवि श्रीप्रताप नारायण जी जयपुर]

निर्बलों को भी सदा बलदायिनी, शक्ति मिलती दूसरी जगमें कहां।
सार कुछ भी था नहीं संसार में, आज जो आशा नहीं होती यहां ॥ १ ॥
लोक यह आशा-भरोसे है खड़ा, शेष का आधार भी बनती यही।
कल्पलता है यही कलिकाल में, धन्य वसुधा पर सुधा यह होरही ॥ २ ॥
केन्द्र है यह कर्म का, उत्साह का शौर्य-साहस-भूति का भाण्डार है।
गुण-गणों गेह गौरव युक्त यह, और यह सामर्थ्य-पारावार है ॥ ३ ॥
मानते कर्मण्यता-माता इसे पालती जो नित्य प्राणीमात्र को।
दिव्य देवी है यही सुख कारिणी दीनजन को और करुणापात्र को ॥ ४ ॥
है यही जन-चित्त-चिन्ताहरिणी, भव्य भगिनी है यही साफल्य की।
जन्म जन्मान्तर भुगा कर जीव को, प्राप्त करवाती यही कैवल्य की ॥ ५ ॥
पास में रखकर इसे सब देवता सिद्धियां आठों अलौकिक पागए।
मानवों ने फलित-आशा-वृक्ष से, लीलया ही लेलिए हैं फल नए ॥ ६ ॥
रातको इसके सहारे जीरही, पद्म-बान्धव के लिए है पद्मिनी।
और दिन में त्राण इससे पारही, विधु-विरह में कोमलाङ्गी कुमुदिनी ॥ ७ ॥
पा नहीं सकती स्वजीवन को कभी, जानकी-जीवन बिना श्री जानकी।
जन्मती आशा यहां पर जो नहीं, वृद्धि क्या होती कभी विज्ञान की ॥ ८ ॥
कष्ट क्या इसके बिना मिटता कभी, मञ्जु-मोहन प्रिय-विरह को व्याधिका ?
वह न जीती अचल आशा की भला, जो न होती राधिका आराधिका ॥ ९ ॥
जो असम्भव काम है सम्भव वही अमर आशा-शक्ति से होजायगा।
क्या निराशा वादियों को लोक में, निज-मनोरथ-सिद्धि का फल पायगा ॥१०॥
सत्य है आशा निराशा झूठ है, एक दिन होगी कभी वह फलवती।
क्यों जमी होगा न आशावाद तब, साथ आशा जगरही जब बलवती ॥ ११ ॥
शोक में, आपत्तिमें, दुख-दर्द में, कौन है इस चित्त को बल देरहा ?
एक आशा ही बड़ा पतवार है, नाव को भव-सिन्धु से जो खे रहा ॥ १२ ॥

-:—:o:—:-

छपगई ! छपगई !! छपगई !!!

भक्ति-चिन्तामणि

(लेखक सु प्रसिद्ध विद्वान और पूजनीय महात्मा श्री भोले बाबा जी)

इस कराल कलिकाल में भव तरने का सर्व प्रधान उपाय यही है कि भगवान् के भक्तों का गुण गाया जाय। भगवान् अपने गुण गायकों से इतने प्रसन्न नहीं होते जितना भक्तों के गुण गायकों से प्रसन्न होते हैं। गुसाई जी का कथन है।

"रामसे अधिक रामकर दासा"

पूज्य बाबा जी ने ऐसे ही भगवद्भक्तों की मनोहर चरितावली इस पुस्तक में गुम्फित की है। बाबाजी की लेखन शैली कितनी मनोहारिणी है। उनके शब्द कैसे सरस और सच्चे हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं है। इसके प्रथम भाग में लगभग ७० भक्तों की कथायें आगई हैं। भाषा इतनी सरल है कि बालक और स्त्रियां भी सहज ही पढ और समझलेती हैं। प्रत्येक कथा को गद्य के सिवाय संक्षेप में एक एक पद्य में भी लिखदिया है, इस प्रकार यह भक्तों के नित्यपाठ करने की चीज भी बनगई है। दूसरे शब्दों में यह पुस्तक नाभाजी कृत प्रसिद्ध भक्त माल की सुन्दर व्याख्या है। २६० पृष्ठ की उपयोगी पुस्तक का मूल्य केवल भक्ति प्रचार के लिये ।≈) लागत मात्र रक्खा है।

पुस्तक मिलने का पता:—

"भक्ति प्रेस" श्री भगवद्भक्ति आश्रम,

रामपुरा, रेवाड़ी गुड़गावां।

प्राप्तिस्वीकार

१. स्तोत्र रत्नावली-इसमें शक्ति, शिव, विष्णु आदि देवताओं तथा राम कृष्ण आदि अवतारों की स्तुति के उत्तम स्तोत्रों का अर्थ सहित संग्रह है। देवताओं के चार सुन्दर सिरंगे चित्र भी हैं। मूल्य ॥)

२. शरणागति रहस्य-लेखक भट्ट मथुरानाथ जी शास्त्री। इस पुस्तक में वाल्मीकि रामायण के आधार पर शरणागति के षडङ्गों का भली प्रकार विवेचन किया है। मूल्य ॥≈)

३. शत श्लोकी-यह श्री भगवान् शंकराचार्य जी महाराज की रचनाओं में से एक उत्कृष्ट रचना है। इसमें स्वामी शंकराचार्य जी ने १०१ श्लोकों में आत्मतत्व का भली प्रकार निरूपण किया है। भाषानुवाद श्रीआनन्द-गिरी स्वामी की संस्कृत टीका के आधार पर किया गया है। मूल्य केवल ≈)दो आना।

४. भगवत्प्राप्ति के विविध उपाय-लेखक श्री जय-दयाल जी गोयन्दका। इसमें लेखक ने

भगवत्प्राप्ति के दस, नौ, आठ इस प्रकार कई उपाय बताते २ अन्त में केवल एक शरणागति उपाय बतलाया है। मूल्य केवल दो पैसा।

५. परमात्मा किसे कहते हैं—लेखक श्री जयदयाल गोयन्दा का, मूल्य एक पैसा।

६. उपनिषदों के चौदह रत्न—इसमें दसों उपनिषदों में से १४ सुन्दर उपदेश पूर्ण कथाओं का संग्रह किया गया है। दस चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य ।≈) छ आना।

७. ईश्वर दयालु और न्यायकारी है—लेखक श्री जयदयाल गोयन्द का। मूल्य एक पैसा।

८. The Story of Mira Bai—इसमें अंग्रेजी भाषा में मीरा बाई की कथा सचित्र बड़े सुन्दर ढंग से लिखी गई है। मूल्य ।≈)

साहित्य-समालोचना

दीपक

दीपक—इस नामका एक मासिक पत्र हाल ही में साहित्य सदन अबोहर से प्रकाशित होने लगा है। स्वामी केशवानंदजी के नेतृत्व में साहित्य सदन जैसी उपयोगी संस्था पंजाब प्रांत में हिन्दी प्रचार और ग्राम सुधार का प्रशस्त कार्य कर रही है, उन्हीं के प्रयत्न से इस पत्रका भी प्रादुर्भाव हुवा है। इस का मुख्य उद्देश्य "ग्राम सुधार" है। सम्पादक हैं—श्रीयुत तेगरामजी विशारद और सैयद कासिम अली साहित्या लंकार वार्षिक मूल्य २)

राकेश

राकेश का बाल रोग विशेषांक—

बरालोकपुर (इटावा) से राकेश नामका आयुर्वेदीय सचित्र पाक्षिक पत्र गत आठ वर्ष से निकल रहा है। यह उसी के नवें वर्ष का विशेषांक है पृष्ठ संख्या २४८ मूल्य १॥), प्रधान सम्पादक द्विवेदी पं० राजकुमार रूपेन्द्रनाथ शास्त्री राजवैद्य। और सहायक सम्पादक हैं आयुर्वेदाचार्य पं हरदयाल जी वैद्य व डा० केशवदत्त जी।

विद्वान् सम्पादकों ने विशेषांक को सर्वांग सुन्दर और उपयोगी बनाने में कुछ कसर नहीं रक्खी है। इस अंक में प्रधानतया तीन स्तम्भ हैं। १—शिशु की प्रसवानन्तर परिचर्या २-बालरोग परिज्ञानम् ३—बालरोग चिकित्सा। इन तीनों विषयों पर पर्याप्त संख्या में लेख हैं। कई लेख बहुत परिश्रम और खोज से लिखेगये जान पड़ते हैं। भारत में बालकों की बढ़ती हुई मृत्यु संख्या को देखते हुये यही कहना पड़ता है कि इस देश में ऐसे पत्रों की अत्यन्त आवश्यकता है जो शिशु पालन की रीति बताते हुये माता पिता को उनके कर्तव्य की शिक्षा दें। उक्त अंक इस अभाव की पूर्ति करेगा, यह हमें पूर्ण आशा है। यह अंक प्रत्येक गृहस्थी के

काम का है। वैद्य एवं विद्यार्थियों को भी इसमें कई नवीन बातें मिलेंगी।

परन्तु एक बात हमें खटकती है। इस विशेषांक में कई आवश्यक चित्रों का अभाव है। लेखकों एवं सम्पादकों के चित्र छाप कर ही 'सचित्र' नाम सार्थक किया गया है बालरोग विज्ञान सम्बन्धी "अपूर्ण धात्रिकर्म नामक" केवल एक ही चित्र है और भी होने चाहिये थे।

दुर्गाप्रशाद गुप्त

भजन

दोऊ कर जोर चरण शिर नाऊं ॥ टेक ॥
तुमरे बिन मेरा नहिं कोई,
तुम्हें छोड़ कर कौन पै जाऊं ॥
तेरो ही ध्यान रहे मेरे दिलमें,
तेरो ही गुण गाऊं ॥
दीना नाथ पतित पावन प्रभु,
कौन भांति मैं तुम्हें रिझाऊं ॥
तन मन बल सब तुमरे दीये,
तुम्हरी ही भेंट चढ़ाऊं ॥
ऐसी शक्ति देवो दया मय,
तुमको कभी न भुलाऊं ॥

२

छवि दिखला जा प्यारे मोहना,
मैंनूं बंशी दी तान सुनाजा मोहना ॥टेक॥
तैनूं ब्रजदीयां नारियां प्यारियां वे,
ओत्थे बुद्दियां कुब्बियां तारियां वे।
कभी भुल्ल के पंजाब विच आजा मोहना ॥
तैनूं मेरी जेदयां बहतेरियां वे,
पर मैंनू इक्क टंगा टेरियां वे।
मेरी ततड़ी दी प्यास बुझा जा मोहना ॥
तू घर आ मेरे ब्रज बासियां वे,
बन्दी तेरे दरश दी प्यासियां वे।
ऐसी प्यासी नूं पानी पिलाजा मोहना ॥
मेरे ऐबों पे रखना दे साइयां वे,
मेरी माफ कर सब ही बुराइयां वे।
चरणदास नू पार लगाजा मोहना ॥

३

है ज्ञानियों के लब पर यारब कलाम तेरा।
और योगियों के दिलमें बसता है नाम तेरा ॥टेक॥
वेदों को जब विचारा हुवा भेद आशकारा।
वे खुद हुवा है पीकर उलफ़त का जाम तेरा ॥ १ ॥
है लोक में भी तू ही परलोक में भी तू ही।
यह भी मकान तेरा वह भी मुकाम तेरा ॥ २ ॥
जलचर भी तुमको जपते, नभचर भी तुमको रटते।
और शाख गुल पै बुलबुल गाती है नाम तेरा ॥ ३ ॥

खाली न जाऊं मैं भी, हिस्सा मुझे भी पहुचे।
यह है फैज़ाम तेरा और मैं गुलाम तेरा ॥ ४॥

४

प्रभु मैं शरणागति तेरी,
निवारो शीघ्र विपत मेरी ॥ टेक ॥
अज्ञानी जानत नहीं धर्माधर्म विचार।
जो तोहे भावे धर्म है दूजा सभी असार ॥
नाथ काटो ममता बेरी ॥ १ ॥
निराश्रयों का आसरा निरधारण आधार।
मेरा तुम बिन कोई नहीं ऐ मेरे सिर्जनहार ॥
करो भव पार नाव मेरी ॥ २ ॥
तू प्रभू अगम अपार है बेहद और बे थाह।
निराकार परमात्मा, सब से बेपरवाह ॥
न जाने क्या मरजी तेरी ॥ ३ ॥
जो जो मैं हूं सो सो तू है तुभसा और न कोय।
अहं आत्मा ब्रह्म हूं, यह ज्ञान समरपूं तोय ॥
प्रगट हो अब न करो देरी ॥४॥

५

गई रजनी हुवा सवेरा,
उठके जपलो तुम ओंकार ॥ टेक॥
ब्रह्म मुहूर्त्त में उठ गाओ,
गुण ईश्वर का ध्यान लगाओ।
परमानन्द मग्न है जाओ,
शोभन समय विचार ॥
आया दिन गया अन्धेरा ॥ १ ॥
पूर्व दिशा अब अरुण भई है,
प्रकृति देवी पट बदल रही है।
यम ने तम की बांह गही है,
जागे सब नर नार ॥
हिये में हरि को डेरा ॥ २ ॥
प्रमुदित नलिनी विहंस खिली है,
प्रिय समीर से सुरभि मिलि है।
अति शोभामय बनस्थली है,
अलिगण करें गुंजार ॥
लसैं आम आंवरे केरा ॥ ३ ॥
उषा देवी के दर्शन पाकर,
हुये प्रफुल्लित सभी चराचर ॥
तुम क्यों सोये शीश झुका कर,
जागा सब संसार ॥
करो भारत का सुलझेरा ॥ ४ ॥
वेद धर्म का सूर्य चढ़ा है,
जामें ज्ञान अनन्त भरा है।
सुनो पढो होय लाभ निरा है,
जिस से होय उद्धार ॥
सब मिट जांय तेरा मेरा ॥ ५ ॥
नव जीवन संसार हुवा है,
ऐक्य भाव विस्तार हुवो है।
सुख मय सब संचार हुवा है,
ज्योति स्वरूप निहार ॥
हरि का हिरदे में डेरा ॥ ६ ॥
आश्रम में चिड़ियां चह चहावें,
पक्षी मिल हरि गीत सुनावें।
नर नारी सब तुमको ध्यावें,
कर रहे जय जय कार ॥
धन्यवाद कहें तेरा ॥ ७ ॥

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	।)
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	।।)
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	=)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	।)॥
११.	शब्द सार संग्रह	,,	।)
१२.	शब्दसंग्रह	,,	।)॥
१३.	सारसंग्रह	,,	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	=)।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=।
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥।)
१९.	गवांक	,,	१)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोटः—एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः—

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।